॥ धर्म का मूल सम्यग्दर्शन है ॥

आत्मधर्म

वर्ष तीसरा
अंक सातवां

: संपादक :
रामजी माणेकचंद दोशी
वकील

कार्तिक
२४७४

आत्म—भावना

सहजशुद्धज्ञानानंदैकस्वभावोऽहं, निर्विकल्पोऽहं, निजनिरंजनशुद्धात्मसम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चय-रत्नत्रयात्मकनिर्विकल्प-समाधिसंजातवीतरागसहजानन्दरूपसुखानुभूतिमात्रलक्षणेन स्वसंवेदनज्ञानेन स्वसंवेद्यो गम्यः प्राप्यो भरितावस्थोऽहं, रागद्वेषमोह-क्रोधमानमायालोभपंचेंद्रियविषयव्यापार मनोवचनकायव्यापार भावकर्म-द्रव्यकर्मनोकर्मख्यातिपूजालाभदृष्टश्रुतानुभूतभोगाकांक्षारूप निदानमायामिथ्याशल्यत्रयादिसर्वविभावपरिणामरहित-शून्योऽहं, जगत्त्रये कालत्रयेऽपि मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च शुद्धनिश्चयनयेन। तथा सर्वेऽपि जीवाः, इति निरंतरं भावना कर्तव्येति ॥

देखो:—श्री समयसार हिंदी, जयसेनाचार्यकृत टीका, पृष्ठ ३७८-९ तथा
५५८ से ५६७ और श्री परमात्मप्रकाश में टीकाकार का अंतिम कथन

अर्थ

मैं सहज शुद्ध ज्ञानानंद स्वभाव निर्विकल्प हूँ, उदासीन हूँ, निजानंद निरंजन शुद्धात्म सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्ररूप निश्चयरत्नत्रयमयी निर्विकल्प समाधि से उत्पन्न वीतराग सहजानंदरूप आनंदानुभूतिमात्र जो स्वसंवेदनज्ञान उससे गम्य हूँ, अन्य उपायों से गम्य नहीं हूँ। निर्विकल्प निजानंद ज्ञानकर ही मेरी प्राप्ति है, पूर्ण हूँ। राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ पाँचों इन्द्रियों के विषय व्यापार, मन-वचन-काय, द्रव्यकर्म-भावकर्म, नोकर्म, ख्याति, पूजा, लाभ, देखे-सुने और अनुभवे भोगों की वांछारूप निदानबंध, माया, मिथ्या ये तीन शल्यें इत्यादि विभाव परिणामों से रहित, सब प्रपंचों से रहित मैं हूँ। तीन लोक, तीन काल में, मन-वचन-कायकर, कृतकारित अनुमोदनाकर, शुद्ध निश्चयनय से मैं आत्माराम ऐसा हूँ तथा सभी जीव ऐसे हैं। ऐसी सदैव भावना करनी चाहिये।

वार्षिक मूल्य तीन रुपया

शाश्वत सुख का मार्ग ३१ दर्शक मासिक पत्र

छुटक अंक पांच आना

आ त्म ध र्म का र्या ल य — मो टा आं क ड़ि या — का ठि या वा ड़

सुख और दुःख

(श्री समयसार, मोक्ष अधिकार, गाथा २९६ के प्रवचन से)

आत्मा को सुख और दुःख का अनुभव होता है किन्तु लाठी इत्यादि जड़ पदार्थों को सुख-दुःख नहीं होता। जो परवस्तुऐं सुख-दुःखरूप से नहीं होती, वे वस्तुऐं आत्मा के सुख-दुःख का कारण नहीं हैं। दुःख या सुख का अनुभव आत्मा की दशा में होता है, इसलिये इस सुख-दुःख का कारण आत्मा ही है। आत्मा की पर्याय में जो मिथ्यात्वभाव और रागद्वेष होते हैं, वे ही दुःख दशा के कारण हैं और सुख का कारण यथार्थ ज्ञान और वीतरागता ही है। कोई शिरच्छेद करे या चंदन से चर्चित करे, वह दुःख या सुख का कारण नहीं है क्योंकि सुख-दुःखरूप होनेवाला जड़ शरीर नहीं किन्तु आत्मा है।

दुःखी और सुखी होनेवाले आत्मा के स्वरूप को जाने बिना दुःख को दूर करके सुख कैसे हो सकता है ? जिस द्रव्य की एक अवस्था दुःखरूप होती है, क्या वह समस्त द्रव्य दुःखरूप हैं या दुःख उसका स्वरूप है या वह दुःख दूर होकर सुखरूप हो सकता है ? दुःख तो क्षणिक विकारी पर्याय है, पूर्ण द्रव्य दुःखरूप नहीं हो जाता, किन्तु क्षणिक एक पर्याय में दुःख है। यदि इस एक पर्याय की अपेक्षा को छोड़कर त्रिकाली द्रव्य की अपेक्षा से देखें तो द्रव्य का स्वभाव त्रिकाली सुखरूप ही है; दुःख उसका स्वरूप नहीं है; अतः द्रव्यस्वभाव की पहचान के द्वारा दुःख दशा को दूर करके सुखदशा प्रगट कर सकता है। परंतु यदि आत्मा के त्रिकाल सुखस्वभाव को न पहचाने और परपदार्थों से सुख माने तो उसकी दुःखदशा दूर नहीं हो सकती और न सुखदशा प्रगट हो सकती है। सुखदशा स्वभाव में से प्रगट होती है, परद्रव्य में से प्रगट नहीं होती।

सुख-दुःख आत्मा की अवस्था है, इसलिये आत्मा स्वयं जैसी अवस्था धारण करे, वैसी अवस्था धारण करके दूसरी दशा को बदल सकता है। शरीर जड़ है, उसमें सुख-दुःख की अवस्था नहीं है, इसलिये शरीर इत्यादि की किसी भी अवस्था के साथ आत्मा के सुख-दुःख का संबंध नहीं है।

परवस्तु में सुख-दुःख नहीं है किन्तु आत्मा के ही पर्याय में सुख है, इतना निश्चय करने के बाद दुःख को दूर करके सुख प्रगट करने के लिये क्या करना चाहिये कि जिससे अब अपने सुख के लिये परमुखापेक्षी न रहना पड़े, किन्तु अपने में ही वह मिल जाय ? निज में ही द्रव्य और

पर्याय—ऐसे दो पहलू हैं। उनमें वर्तमान में विद्यमान पर्याय तो स्वयं दु:खरूप हैं, इसलिये उस पर्याय के आधार से या उसके लक्ष्य से सुख प्रगट नहीं हो सकता, परंतु जहाँ परिपूर्ण सुख हो और दु:ख न हो—ऐसे ही सुखस्वरूप द्रव्य के आधार से-लक्ष्य से सुखदशा प्रगट होती है और दु:ख दशा दूर होती है। वर्तमान पर्याय का लक्ष्य पर के ऊपर जाता है, इसलिये उस पर्याय में दु:ख है, परद्रव्य के लक्ष्य को छोड़कर यदि स्व लक्ष्य में पर्याय को लगावे तो उस पर्याय में सुख प्रगट होता है। इसलिये—

स्वाधीन ज्ञान के द्वारा अर्थात् प्रज्ञा के द्वारा शुद्ध आत्मा और दु:खदायक दशा (बंधभाव) इन दोनों के भिन्न-भिन्न स्वरूप को पहिचानने और अभिप्राय के बल से शुद्धात्मस्वभाव का अवलंबन करके बंधभाव का अवलंबन नष्ट करना, यही सुख का उपाय है। और जो संपूर्ण सुख है, सो ही मोक्ष है।

प्रश्न—यद्यपि पुण्य-पाप के बंधभाव में दु:ख है, तथापि अज्ञानी को दु:ख क्यों नहीं मालूम होता ?

उत्तर—क्योंकि उसने अनादिकाल से पुण्य-पाप से भिन्न आत्मस्वभाव को न तो जाना है, न माना है और न प्रतीति में लिया है, प्रत्युत यों माना है कि पुण्य-पाप ही मैं हूँ, इसीलिये वह पुण्य-पाप के दु:खरूप भावों में ही सुख मान रहा है। पुण्य-पाप के पहलू को ही अनादि से अनुभव किया है और पुण्य-पाप रहित स्वभाव का कभी अनुभव नहीं किया, इसीलिये अनाकुल सुखस्वरूप की उसे खबर नहीं है अर्थात् उसने मंद दु:खरूप भावों में सुख की मान्यता कर ली है। यदि पुण्य-पापरहित स्वभाव को ध्यान में ले तो पुण्य-पाप को दु:खरूप जाने और उसे दूर करने का प्रयत्न भी करे।

अज्ञानी जीव के सतत् आकुलताजन्य नई-नई चाह हुआ करती है, यदि दु:ख न हो तो आकुलता कैसे हो ? जो आकुलता है, सो ही दु:ख है। अब उस दु:ख का क्या कारण है ? उसे जानकर उस कारण के दूर करने से दु:ख दूर होता है, किन्तु दु:ख के मूल कारण को जाने बिना अन्य उपाय करते रहने से दु:ख दूर नहीं होता। मेरे दु:ख का कारण शरीर, कर्म या संयोग है अथवा अंतर का कोई विपरीत भाव दु:ख का कारण है ? प्रथम तो शरीर कर्म इत्यादि पदार्थ जड़ हैं, वे सुख दु:खरूप नहीं होते, जो वस्तु स्वयं सुख-दु:खरूप नहीं होती, वह सुख-दु:ख का यथार्थतया कारण भी नहीं होती, इसलिये कर्म इत्यादि कोई पदार्थ मेरे दु:ख का कारण नहीं है; परंतु दु:ख मेरी

पर्याय में है, इसलिये दु:ख का कारण भी मेरी पर्याय में ही है। त्रिकाली स्वभाव दु:ख का कारण नहीं है किन्तु पर्याय में जो विपरीत भाव है, वही दु:ख का कारण है। इससे यह निश्चय हुआ कि उस दु:ख को दूर करने के लिये विपरीत भाव ही दूर करना चाहिये।

अवस्था में मिथ्यात्व और रागद्वेषरूप बंधभाव ही दु:ख का कारण है और मैं तो त्रिकाल शुद्ध चैतन्यस्वरूप हूँ, मेरा शुद्ध चैतन्यस्वरूप दु:ख का कारण नहीं।—इस प्रकार आत्मा के शुद्ध स्वरूप और बंधभावों को प्रज्ञारूपी छैनी के द्वारा भिन्न-भिन्न पहचानकर प्रज्ञा के द्वारा आत्मा को ग्रहण करना और बंधभाव को छोड़ना ही सुखी होने का और दु:ख दूर करने का उपाय है। ♦

उपादान-निमित्त की स्वतन्त्रता

पूज्य श्री कानजी स्वामी का प्रवचन

भाद्रपद कृष्णा प्रतिपदा वीर संवत् २४७३

१- उपादान निमित्त

उपादान किसे कहना चाहिये और निमित्त किसे कहना चाहिये ? आत्मा की त्रिकाल शक्ति को उपादान कहते हैं तथा पर्याय की वर्तमान शक्ति को भी उपादान कहते हैं। जिस अवस्था में कार्य होता है, उस समय की वह अवस्था स्वयं ही उपादान कारण है; और उस समय उसे अनुकूल पर द्रव्य निमित्त है। निमित्त को लेकर उपादान में कुछ नहीं होता। इस उपादान निमित्त संबन्धी विविध प्रकार की मिथ्या मान्यताओं को दूर करने के लिये अनेक दृष्टान्तों के द्वारा उपादान-निमित्त का सिद्धान्त समझाया जाता है।

२- गुरु के निमित्त से ज्ञान नहीं होता

आत्मा में जो ज्ञान होता है, वह ज्ञान आत्मा की पर्याय की शक्ति से होता है या शास्त्र के निमित्त से होता है ? आत्मा की पर्याय की योग्यता से ही ज्ञान होता है, निमित्त से ज्ञान नहीं होता। जिस समय आत्मा की पर्याय में पुरुषार्थ के द्वारा सम्यक्ज्ञान को प्रगट करने की योग्यता होती है और आत्मा सम्यक्ज्ञान प्रगट करता है, उस समय गुरु को निमित्त कहा जाता है; किन्तु गुरु के निमित्त से वह ज्ञान नहीं हुआ है।

जब जीव में प्रथम सम्यक्ज्ञान का पुरुषार्थ होता है, तब गुरु की वाणी का योग होता ही है, किन्तु जब तक उस वाणी पर जीव का लक्ष है, तबतक राग है, और जब वाणी का लक्ष छोड़कर स्वभाव का निर्णय करता है, तब उस निर्णय में गुरु को निमित्त कहा जाता है। और जीव को जब गुरु के बहुमान का विकल्प उठता है, तब वह यों भी कहता है कि मुझे गुरु से ज्ञान हुआ है।

३- यह कहना कि मुझे 'गुरु से ज्ञान हुआ है' सो कपट नहीं किन्तु व्यवहार है

प्रश्न—ज्ञान तो निज से ही हुआ है, गुरु से नहीं हुआ, यह जानते हुए भी यों कहना कि गुरु से ज्ञान हुआ है, सो क्या कपट नहीं कहलायेगा ?

उत्तर—व्यवहार में यों ही कहा कहा जाता है, यह कपट नहीं किन्तु यथार्थ सिद्धान्त है। गुरु के बहुमान का शुभविकल्प उत्पन्न हुआ है, इसलिये निमित्त में आरोप किया जाता है।

प्रश्न—गुरु के बहुमान का विकल्प उठता है, सो तो ठीक है, किन्तु यह क्यों कहा जाता है कि 'गुरु से ज्ञान हुआ है' ?

उत्तर—बहुमान का विकल्प उठा है, इसलिये निमित्त में आरोप करके व्यवहार से वैसा कहा जाता है। आरोप की भाषा ऐसी ही होती है। किन्तु वास्तव में गुरु से ज्ञान नहीं हुआ है, अथवा ऐसा भी नहीं है कि यदि गुरु न होते तो ज्ञान नहीं होता। जब स्वयं पुरुषार्थ से ज्ञान करता है, तब गुरु निमित्त के रूप में माना जाता है, यही सिद्धान्त है।

४- मिट्टी में घड़ारूप पर्याय होने की योग्यता सदा की नहीं है किन्तु एक समय की ही है

मिट्टी से घड़ा बनता है, सो वह उसकी वर्तमान पर्याय की उस समय की योग्यता से ही बना है, वह कुम्हार के कारण से नहीं बना। कोई यह कहे कि मिट्टी में घड़ा बनने की योग्यता तो सदा विद्यमान है, किन्तु जब कुम्हार आया, तब घड़ा बना; तो उसकी यह मान्यता मिथ्या है। मिट्टी में घड़ारूप से होने की योग्यता सदा नहीं है किन्तु वर्तमान एक ही समय की पर्याय की वह योग्यता है, और जिस समय पर्याय में योग्यता होती है, उस समय ही घड़ा होता है। अन्य पदार्थों से मिट्टी को अलग पहिचानने के लिये द्रव्यार्थिकनय से यह कहा जाता है कि 'मिट्टी में घड़ा होने की योग्यता है।' किन्तु वास्तव में तो जब घड़ा होता है, तभी उसमें घड़ा होने की योग्यता है, उससे पूर्व उसमें घड़ा होने की योग्यता नहीं, किन्तु दूसरी पर्यायें होने की योग्यता है।

५- गुरु के कारण श्रद्धा नहीं होती

आत्मा पुरुषार्थ से सच्ची श्रद्धा करता है, वह उसकी पर्याय की वर्तमान योग्यता है, और गुरु

अपने कारण से उपस्थित होता है, जो कि निमित्त है। ऐसा नहीं है कि जीव ने श्रद्धा की, इसलिये गुरु को आना पड़ा और ऐसा भी नहीं है कि गुरु आये, इसलिये उनके कारण से श्रद्धा हुई है; दोनों अपने कारण से हैं। यदि ऐसा माने कि गुरु आये, इसलिये श्रद्धा हुई तो गुरु कर्ता और शिष्य को श्रद्धा हुई, इसलिये वह उसका कार्य हुआ, इसप्रकार दो द्रव्यों के कर्ता-कर्मपन हो जायेगा; अथवा ऐसा माने कि श्रद्धा की, इसलिये गुरु आ गये तो श्रद्धा कर्ता और गुरु आये, सो वह उसका कार्य कहलायेगा—और इसप्रकार दो द्रव्यों के कर्ता-कर्मपन हो जायेगा। किन्तु जो श्रद्धा हुई, सो वह श्रद्धा की पर्याय के कारण से और जो गुरु आये, सो वह गुरु की पर्याय के कारण से आये-इसप्रकार दोनों स्वतंत्र हैं।

६- शास्त्र से ज्ञान नहीं होता

शास्त्र के सन्मुख आ जाने से ज्ञान हो गया हो, सो बात नहीं है; किन्तु उस समय अपनी योग्यता है, उस क्षण जीव अपनी शक्ति से ज्ञान करता है और तब शास्त्र निमित्त के रूप में विद्यमान है। ज्ञान होना हो, इसलिये शास्त्र को अपना ही पड़ता है—ऐसी बात नहीं है, और ऐसा भी नहीं है कि शास्त्र आया, इसलिये ज्ञान हुआ है।

आत्मा के सामान्य ज्ञानस्वभाव का विशेषरूप परिणमन होकर ही ज्ञान होता है; वह ज्ञान निमित्त के अवलम्बन के बिना और राग के आश्रय के बिना सामान्य ज्ञानस्वभाव के आश्रय से ही होता है।

७- कुम्हार के कारण घड़ा नहीं बना

मिट्टी की जिस समय की पर्याय में घड़ा बनने की योग्यता है, उसी समय वह अपने उपादान से ही घड़े के रूप में हो जाती है, और उस समय कुम्हार की उपस्थिति अपने निज के कारण से होती है-जिसे निमित्त कहा जाता है। जब घड़ा बनता है तब-उस समय कुम्हार वगैरह न हों—ऐसा नहीं हो सकता, किन्तु कुम्हार आया, इसलिये मिट्टी की अवस्था घड़ारूप हो गई, सो बात नहीं है; और ऐसा भी नहीं हैं कि घड़ा बनना था, इसलिये कुम्हार को आना पड़ा। मिट्टी में उस समय की स्वतंत्र पर्याय की योग्यता से घड़ा बना है और उस समय कुम्हार अपनी पर्याय की स्वतंत्र योग्यता से उपस्थित था; किन्तु कुम्हार ने घड़ा नहीं बनाया, और न कुम्हार के निमित्त से ही घड़ा बना है।

८- एक पर्याय में दो प्रकार की योग्यता हो ही नहीं सकती

प्रश्न—जब तक कुम्हाररूप निमित्त नहीं था, तब तक मिट्टी में से घड़ा क्यों नहीं बना ?

उत्तर—यहाँ यह विशेष विचारणीय है कि जिस समय मिट्टी में से घड़ा नहीं बना, उस समय क्या उसमें घड़ा बनने की योग्यता है ? अथवा उसमें घड़ा बनने की योग्यता ही नहीं है ?

यदि ऐसा माना जाये कि जब 'मिट्टी में से घड़ा नहीं बना था, तब उस समय भी मिट्टी में घड़ा बनने की योग्यता थी, परन्तु निमित्त नहीं मिला, इसलिये घड़ा नहीं बना, तो यह मान्यता ठीक नहीं है; क्योंकि जब मिट्टी में घड़ारूप अवस्था नहीं हुई, तब उसमें पिंडरूप अवस्था है और उस समय वह अवस्था होने की ही उसकी योग्यता है। जिस समय मिट्टी की पर्याय में पिंडरूप अवस्था की योग्यता होती है, उसी समय उसमें घड़ारूप अवस्था की भी योग्यता नहीं हो सकती–क्योंकि एक ही पर्याय में एक साथ दो प्रकार की योग्यता कदापि नहीं हो सकती। यह सिद्धान्त अत्यंत महत्व का है, वह प्रत्येक स्थान पर लागू करना चाहिये।

उस सिद्धान्त से निश्चय हुआ कि मिट्टी में जिस समय पिंडरूप अवस्था थी, उस समय उस में घड़ा रूप अवस्था की योग्यता ही नहीं थी, इसीलिये उसमें घड़ा नहीं बना, परन्तु यह बात मिथ्या है कि कुम्हार नहीं था, इसलिये घड़ा नहीं बना।

९–'निमित्त न मिले तो कार्य नहीं होता' यह मान्यता मिथ्या है, तत्सम्बन्धी पुत्र का दृष्टांत

'किसी के पुत्र होना था किन्तु विषयरूप निमित्त नहीं मिला, इसलिये नहीं हुआ' यह बात मिथ्या है। यदि पुत्र होना ही हो तो जिस समय होना हो, उस समय होता ही है, और उस समय स्वयं विषयादि निमित्त होते हैं। पुत्र अर्थात् एक आत्मा और अनंत रजकण आने तो हैं किन्तु पति–पत्नी ब्रह्मचर्य पालन कर रहे हैं, इसलिये पुत्र के होने का निमित्त नहीं मिलता, इसलिये वे आते हुऐ रूक गये हैं—यह मान्यता मिथ्यात्व है। पुत्र होना ही न था अर्थात् उस जीव और अनंत रजकणों की क्षेत्रान्तररूप अवस्था की योग्यता ही वहाँ नहीं आनी थी, इसलिये वे नहीं आये।

'पुत्र होने की योग्यता तो थी किन्तु निमित्त नहीं मिला, इसलिये नहीं हुआ, और जब निमित्त मिल गया तब हुआ'—इस मान्यता का अर्थ यह हुआ कि निमित्त ने कार्य किया; यह दो द्रव्यों की एकत्वबुद्धि ही है। अथवा माता–पिता ने निमित्त का मार्ग ग्रहण नहीं किया, इसलिये पुत्र नहीं हुआ, यह बात भी मिथ्या है। जब पुत्र होने की योग्यता होती है, तब वह होता है और उस समय विषयादि का अशुभ विकल्प तथा शरीर की योग रूप क्रिया होती है–उसे निमित्त कहते हैं। किन्तु पुत्र उत्पन्न होना था, इसलिये विकल्प अथवा क्रिया नहीं होती, और क्रिया तथा विकल्प हुआ, इस कारण से पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। और ऐसा भी नहीं है कि विषय का अशुभ विकल्प

हुआ, इसलिये देह की क्रिया हुई, और देह की क्रिया होनी थी, इसलिये अशुभ विकल्प हुआ, यह बात भी नहीं है। प्रत्येक द्रव्य ने अपना कार्य स्वतंत्रता से किया है।

१०- जीव निमित्तों को मिला या हटा नहीं सकता, मात्र अपना लक्ष बदल सकता है

जीव अपने में शुभभाव कर सकता है किन्तु शुभभाव करने से वह बाहर के शुभ निमित्तों को प्राप्त कर सके अथवा अशुभ निमित्तों को दूर कर सके, सो बात नहीं है। जीव स्वयं अशुभ निमित्तों पर से लक्ष को हटाकर शुभ निमित्तों पर लक्ष करे, किन्तु निमित्तों को निकट लाने अथवा दूर करने में वह समर्थ नहीं है। किसी जीव ने जिनमंदिर अथवा किसी अन्य धर्मस्थान का शिलान्यास करने का शुभभाव किया, इसलिये जीव के भाव के कारण बाह्य में शिलान्यास की क्रिया हुई-यह बात मिथ्या है। जीव मात्र निमित्त पर लक्ष कर सकता है अथवा लक्ष को छोड़ सकता है, किन्तु वह निमित्तरूप परपदार्थों में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। वस्तु का ऐसा स्वभाव ही है। इसे समझना सो भेदज्ञान है।

११- पंच महाव्रत के कारण चारित्रदशा नहीं है और चारित्र के कारण वस्त्र त्याग नहीं है

जिसे आत्मा की निर्मल वीतराग चारित्रदशा होती है, उसे उस दशा के होने से पूर्व चारित्र को अंगीकार करने का विकल्प उठता है। जो विकल्प उठा, सो राग है, उसके कारण वीतराग-भावरूप चारित्र प्रगट नहीं होता; चारित्र तो उसी समय की पर्याय के पुरुषार्थ से प्रगट हुआ है।

चारित्रदशा में शरीर की नग्नदशा शरीर के कारण होती है। आत्मा को चारित्र अंगीकार करने का विकल्प उठा, उस के कारण अथवा चारित्रदशा प्रगट की, इसलिये शरीर पर से वस्त्र हट गये, ऐसी बात नहीं है; किन्तु उस समय वस्त्रों के परमाणुओं की अवस्था में क्षेत्रान्तरित होने की वैसी ही योग्यता थी, इसलिये वे हट गये हैं। आत्मा ने विकल्प किया, इसलिये उस विकल्प के आधीन होकर वस्त्र छूट गये—यदि ऐसा हो तो विकल्प कर्ता हुआ और जो वस्त्र छूटे, वह उसका कर्म हुआ; अर्थात् दोनों द्रव्य एक हो गये। इसी प्रकार ऐसा भी नहीं है कि वस्त्र छूटना थे, इसलिये जीव के विकल्प उठा है; क्योंकि यदि ऐसा हो तो वस्त्र की पर्याय कर्ता और वह विकल्प उसका कर्म कहलायेगा और इसप्रकार दो द्रव्य एक हो जायेंगे। किन्तु जब स्वभाव के भानपूर्वक चारित्र का विकल्प उठता है और चारित्र ग्रहण करता है, तब वस्त्र छूटने का प्रसंग सहज ही उसके कारण से होता है। किन्तु 'मैंने वस्त्रों का त्याग किया अथवा मेरा विकल्प निमित्त हुआ, इसलिये वस्त्र छूट गये—ऐसी मान्यता मिथ्यात्व है। वीतरागचारित्र से पूर्व पंच महाव्रतादि का विकल्प आये बिना

नहीं रहता किन्तु उस विकल्प के आश्रय से चारित्रदशा प्रगट नहीं होती।

चारित्र में पंच महाव्रत के विकल्प को निमित्त कहा जाता है। विकल्प तो राग है, उससे स्वभावोन्मुख नहीं हुआ जाता किन्तु जब विकल्प को छोड़कर स्वभाव की ओर उन्मुख होता है, तब पूर्व के विकल्प को निमित्त कहा जाता है। पंच महाव्रतादि के विकल्प को चारित्र का निमित्त कब कहा जाता है? यदि स्वभाव में लीनता का पुरुषार्थ करके चारित्रदशा प्रगट करे तो विकल्प उसका निमित्त कहा जा सकता है; किन्तु यह मान्यता मिथ्यात्व है कि-यदि पंच महाव्रत का विकल्परूप निमित्त करूँ तो चारित्र प्रगट हो। इसी प्रकार व्यवहारदर्शन, व्यवहारज्ञान और व्यवहारचारित्र के परिणाम करूँ तो उससे निश्चयदर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट हो, यह मान्यता भी मिथ्यात्व है।

१२- समय समय की स्वतंत्रता और भेदज्ञान

यह बात प्रत्येक वस्तु के स्वतंत्र स्वभाव की है। स्वभाव की स्वतंत्रता को न समझे और यह माने कि 'निमित्त से होता है' तो वहाँ सम्यक् श्रद्धा नहीं है, और सम्यक् श्रद्धा के बिना ज्ञान सच्चा नहीं है, शास्त्र का पठन-पाठन सच्चा नहीं है, व्रत सच्चे नहीं है, त्याग सच्चा नहीं है। प्रत्येक वस्तु में समय-समय की पर्याय की स्वतंत्रता है। प्रत्येक पदार्थ में उसके कारण से समय-समय की उसकी पर्याय की योग्यता से कार्य होता है। पर्याय की योग्यता उपादानकारण है। और उस समय उस कार्य के लिये अनुकूलता का आरोप जिस पर आ सकता है, ऐसी योग्यतावाली दूसरी वस्तु योग्य क्षेत्र में होती है, उसे निमित्त कहा जाता है, किन्तु उसके कारण से वस्तु में कुछ नहीं होता। ऐसी भिन्नता की यथार्थ प्रतीति भेदज्ञान है।

आत्मा और प्रत्येक परमाणु की पर्याय स्वतंत्र है। जीव को पढ़ने का विकल्प उठा, इसलिये पुस्तक हाथ में आ गई, ऐसी बात नहीं; अथवा पुस्तक आ गई, इसलिये विकल्प उठा, सो भी नहीं है। इसीप्रकार ज्ञान होना था, इसलिये पढ़ने का विकल्प उठा, ऐसा नहीं है, और पढ़ने का विकल्प उठा, इसलिये ज्ञान हुआ-सो भी नहीं है। किन्तु प्रत्येक द्रव्य ने उस समय स्वतंत्रता से अपना-अपना कार्य किया है। वीतरागी भेदविज्ञान यह बताता है कि-प्रतिसमय प्रत्येक पर्याय अपने स्वतंत्र उपादान से ही कार्य करता है। वस्तु स्वरूप ऐसा पराधीन नहीं है कि निमित्त आए तो उपादान का कार्य हो किन्तु उपादान का कार्य स्वतंत्र होता है, तब निमित्त उसकी अपनी योग्यता से होता है।

१३- सूर्य का उदय हुआ, इसलिये छाया से धूप हो गई, यह बात मिथ्या है।

छाया से धूप होने की परमाणु की अवस्था में जिस समय योग्यता होती है, उसी समय धूप

होती है, और उस समय सूर्य इत्यादि निमित्तरूप में हैं। किन्तु यह बात मिथ्या है कि सूर्य इत्यादि का निमित्त मिला, इसलिये छाया से धूप हो गई। तथा छाया में से धूप के रूप में अवस्था होनी थी, इसलिये सूर्य इत्यादि को आना पड़ा–यह बात भी मिथ्या है। सूर्य का उदय हुआ, सो यह उसकी उस समय की योग्यता है, और जो परमाणु छाया में से धूप के रूप में हुए हैं, उसकी उस समय की वैसी योग्यता है।

१४- केवलज्ञान और वज्रवृषभनाराचसंहनन-दोनों की स्वतंत्रता

जब केवलज्ञान होता है, तब वज्रवृषभनाराचसंहनन निमित्त होता है। किन्तु ऐसा नहीं है कि वह वज्रवृषभनाराचसंहनन निमित्तरूप से है, इसलिये केवलज्ञान है और ऐसा भी नहीं है कि केवलज्ञान होना है, इसलिये परमाणुओं को वज्रवृषभनाराचसंहननरूप होना पड़ा है। जहाँ जीव की पर्याय में केवलज्ञान के पुरुषार्थ की जागृति होती है, वहाँ शरीर के परमाणुओं में वज्रवृषभनाराच – संहननरूप अवस्था उसकी योग्यता से होती है। दोनों की योग्यता स्वतंत्र है, किसी के कारण से कोई नहीं है। जब जीव के केवलज्ञान प्राप्त करने की योग्यता होती है, तब शरीर के परमाणुओं में वज्रवृषभनाराचसंहननरूप अवस्था की ही योग्यता होती है–ऐसा मेल स्वभाव से ही है, कोई एक-दूसरे के कारण से नहीं है।

१५- पेट्रोल खतम हो गया, इसलिये मोटर रुक गई-यह बात सच नहीं है

कोई मोटर चली जा रही हो और उसकी पेट्रोल की टंकी के फूट जाने से उसमें से पेट्रोल निकल जाये और चलती हुई मोटर रुक जाये तो वहाँ यह नहीं समझना चाहिये कि पेट्रोल निकल गया है, इसलिये मोटर रुक गई है। जिस समय मोटर में गतिरूप अवस्था की योग्यता होती है, उस समय वह गति करती है; उस समय पेट्रोल की अवस्था मोटर की टंकी के क्षेत्र में रहने की होती है। किन्तु यह बात गलत है कि पेट्रोल है, इसलिये मोटर चलती है। मोटर का प्रत्येक परमाणु अपनी स्वतंत्र क्रियावति शक्ति की योग्यता से गमन करता है। इसलिये यह बात ठीक नहीं है कि पेट्रोल निकल गया, इसलिये मोटर की गति रुक गई है। जिस क्षेत्र में जिस समय रुकने की योग्यता थी, उसी क्षेत्र में और उसी समय मोटर रुकी है; और पेट्रोल के परमाणु भी अपनी योग्यता से अलग हुए हैं। यह बात सच नहीं है कि पेट्रोल खतम हो गया इसलिये मोटर रुक गई है।

१६- वाणी अपने आप (परमाणुओं से) बोली जाती है, जीव उसका कर्ता नहीं

बोलने का विकल्प-राग हुआ, इसलिये वाणी बोली गई-ऐसा नहीं है और वाणी बोली

जाने वाली थी, इसलिये विकल्प हुआ—सो ऐसा भी नहीं है। यदि राग के कारण वाणी बोली जाती हो तो राग कर्ता और वाणी उसका कर्म कहलायेगा। और यदि ऐसा हो कि वाणी बोली जाने वाली थी, इसलिये राग हुआ तो वाणी के परमाणु कर्ता और राग उसका कर्म कहलायेगा। किन्तु राग तो जीव की पर्याय है और वाणी परमाणु की पर्याय है-उनके कर्ताकर्म भाव कहाँ से होगा? यदि जीव की पर्याय की योग्यता हो तो राग होता है, और वाणी उस परमाणु का उस समय का सहज परिणमन है। परमाणु स्वतंत्रतया वाणी रूप से परिणमित होते हैं, तब जीव के राग हो तो उसे निमित्त कहा जाता है। केवली भगवान के वाणी होती है, तथापि राग नहीं होता।

१७- शरीर अपनी योग्यता से चलता है, जीव की इच्छा से नहीं

जीव इच्छा करता है, इसलिये शरीर चलता है, यह बात नहीं है और शरीर चलता है, इसलिये जीव के इच्छा होती है-ऐसा भी नहीं है। शरीर के परमाणुओं में क्रियावतीशक्ति की योग्यता से गति होती है, तब किसी जीव के अपनी अवस्था की योग्यता से इच्छा होती है और किसी के नहीं भी होती है। केवली के शरीर की गति होने पर भी इच्छा नहीं होती। इच्छा के निमित्त से शरीर चलता है—यह बात मिथ्या है, और यह बात भी मिथ्या है कि गति के निमित्त से इच्छा होती है।

१८- विकल्प निमित्त हैं, इसलिये ध्यान जमता है-यह बात सच नहीं है

चैतन्य के ध्यान का विकल्प उठता है, सो राग है; उस विकल्परूपी निमित्त के कारण से ध्यान जमता हो, सो बात नहीं है, किन्तु जहाँ ध्यान जमता हो, वहाँ पहले विकल्प होता है। विकल्प के कारण ध्यान नहीं होता और ध्यान के कारण विकल्प नहीं होता। जिस पर्याय में विकल्प था, वह उस पर्याय की स्वतंत्र योग्यता से था और जिस पर्याय में ध्यान जमा है, वह उस पर्याय की स्वतंत्र योग्यता से जमा है।

१९- सम्यक् नियतिवाद और उसका फल

प्रश्न—यह तो नियतिवाद हो गया?

उत्तर—यह सम्यक् नियतिवाद है, मिथ्या नियतिवाद नहीं है। सम्यक् नियतिवाद का अर्थ क्या है? जिस पदार्थ में, जिस समय, जिस क्षेत्र में, जिस निमित्त से जैसा होना है, वैसा होता ही है, उसमें किंचित्मात्र भी परिवर्तन करने के लिये कोई समर्थ नहीं है-ऐसा ज्ञान में निर्णय करना, सो सम्यक् नियतिवाद है, और उस निर्णय में स्वभाव की ओर का अनंत पुरुषार्थ आ जाता है। जिस

ज्ञान ने यह निर्णय किया कि सभी नियति है, उस ज्ञान में यह भी निर्णय हो गया कि किसी भी द्रव्य में कुछ भी परिवर्तन करने के लिये मैं समर्थ नहीं हूँ; इस प्रकार नियत का निर्णय करने पर 'मैं पर का कुछ कर सकता हूँ'—ऐसा अहंकार दूर हो गया और ज्ञान, पर से उदासीन होकर स्वभावोन्मुख हो गया।

अपनी पर्याय भी क्रमबद्ध ही है, उस क्रमबद्धता का निर्णय करनेवाला ज्ञान, राग के होने पर भी उसका निषेध करके द्रव्यस्वभाव की ओर उन्मुख होता है। वह किस प्रकार उन्मुख होता है? जब राग को जानता है, तब ज्ञान में ऐसा विचार करता है कि मेरी क्रमबद्धपर्यायें मेरे द्रव्य में से प्रगट होती हैं, त्रिकाल द्रव्य ही एक के बाद एक पर्याय को द्रवित करता है, वह त्रिकाल द्रव्य, रागस्वरूप नहीं है, इसलिये वह जो राग हुआ है, सो भी मेरा स्वरूप नहीं है और मैं उसका कर्ता नहीं हूँ। इस प्रकार सम्यक् नियतिवाद का अपने ज्ञान में जिसने निर्णय किया, उस जीव का ज्ञान अपने शुद्ध स्वभाव की ओर उन्मुख होता है और उसके स्वभाव के श्रद्धा-ज्ञान होते हैं, वह पर से उदासीन हुआ, राग का अकर्ता हुआ और पर से तथा विकार से हटकर बुद्धि स्वभाव में ही रुक गई। यह सम्यक् नियतिवाद का फल है। इस में ज्ञान और पुरुषार्थ की स्वीकृति है। किन्तु जो जीव नियतिवाद को मानता है अर्थात् यह मानता है कि जैसा होना होगा वैसा होगा, परन्तु नियतिवाद के निर्णय में अपना जो ज्ञान और पुरुषार्थ आता है, उसका स्वीकार नहीं करता अर्थात् स्वभावोन्मुख नहीं होता वह मिथ्यादृष्टि है; और नियतिवाद गृहीतमिथ्यात्व का भेद है, इसलिये वह गृहीतमिथ्यादृष्टि है।

२०- सम्यक् नियतिवाद में पुरुषार्थ इत्यादि पाँचों समवाय एक साथ हैं

जो अज्ञानी यथार्थ निर्णय नहीं कर सकते, उन्हें ऐसा लगता है कि यह तो एकान्त नियतिवाद है। किन्तु इस नियतिवाद का यथार्थ निर्णय करने पर अपने केवलज्ञान का निर्णय हो जाता है। गुरु, शिष्य, शास्त्र इत्यादि समस्त पदार्थों की जिस समय जो योग्यता होती है, वही पर्याय होती है—ऐसा निश्चय किया कि स्वयं उसका ज्ञाता रह गया। जानने में विकल्प नहीं है; अस्थिरता का जो विकल्प उठता है, उसका कर्ता नहीं है। इस प्रकार क्रमशः पर्याय की श्रद्धा होने पर द्रव्यदृष्टि होने पर राग का कर्तृत्व उड़ जाता है। ऐसे सम्यक् नियतिवाद की श्रद्धा में ही पाँचों समवाय एक साथ समा जाते हैं। पहले तो स्वभाव का ज्ञान और श्रद्धा की, सो पुरुषार्थ; उसी समय जो निर्मल पर्याय प्रगट होनी नियति थी, सो वही पर्याय प्रगटी है-वह नियति; उस समय जो पर्याय प्रगट हुई,

वही स्वकाल और जो पर्याय प्रगट हुई, वह स्वभाव में थी–वही प्रगट हुई है; इसलिये वह स्वभाव और उस समय पुद्गल कर्म का स्वयं अभाव होता है, सो उस अभावरूप निमित्त एवं सद्गुरु इत्यादि हों सो वे सद्भावरूप निमित्त हैं। क्रमबद्धपर्याय ही होती है, इसकी श्रद्धा करने पर जीव, जगत का साक्षी हो जाता है। इसमें स्वभाव का अनन्त पुरुषार्थ समा जाता है, यह जैनदर्शन का मूलभूत रहस्य है।

२१- सम्यक् नियतिवाद और मिथ्यानियतिवाद

गोमट्टसार कर्मकांड की ८८२ वीं गाथा में जिस नियतिवादी जीव को गृहीत मिथ्यादृष्टि कहा है, वह जीव तो नियतिवाद की बात करता है किन्तु अपने ज्ञान में ज्ञाता–दृष्टापन का पुरुषार्थ नहीं करता। यदि सम्यक् नियतिवाद का यथार्थ निर्णय करे तो उसमें स्वभाव के ज्ञाता–दृष्टापन का पुरुषार्थ आ ही जाता है। किन्तु वह जीव तो मात्र परलक्ष से ही नियतिवाद को मान रहा है और नियतिवाद के निर्णय में अपना जो ज्ञान और पुरुषार्थ कार्य करता है, उसे वह स्वीकार नहीं करता, इसलिये वह जीव मिथ्या नियतिवादी है और उसी को गृहीतमिथ्यात्वी कहा है। नियतिवाद का सम्यक् निर्णय गृहीत एव अगृहीत मिथ्यात्व का नाश करनेवाला है। सम्यक् नियतिवाद कहो या स्वभाव कहो, उसमें उस प्रत्येक समय की पर्याय की स्वतंत्रता सिद्ध हो जाती है। यदि इस न्याय को जीव बराबर समझे तो उपादान–निमित्त सम्बन्धी सभी गड़बड़ दूर हो जाये। क्योंकि जिस वस्तु में जिस समय जो पर्याय होती है, वही होती है तो फिर 'अमुक निमित्त चाहिये अथवा अमुक निमित्त के बिना नहीं हो सकती'–ऐसी बात को अवकाश ही कहाँ है? सम्यक् नियतिवाद का निर्णय करने में पुरुषार्थ आता है। सच्ची श्रद्धा–ज्ञान कार्य करता है। स्वभाव में बुद्धि रुकती है—तथापि उस सबको जो जीव नहीं मानता और नियतिवाद की बात करता है, उस जीव को ऐकान्तिक गृहीत मिथ्यादृष्टि कहा गया है। किन्तु जो जीव नियतिवाद को मानकर पर के और राग के कर्तृत्व का अभाव करता है तथा ज्ञाता–दृष्टापन का साक्षीभाव प्रगट करता है, वह जीव अनन्त पुरुषार्थी सम्यग्दृष्टि है।

२२- कौन कहता है कि सम्यक् नियतिवाद गृहीत मिथ्यात्व है?

सम्यक् नियतिवाद गृहीत मिथ्यात्व नहीं किन्तु वीतरागता का कारण है। जो ऐसे सम्यक् नियतिवाद को एकान्त मिथ्यात्व कहते हैं, उन्होंने इस बात को यथार्थतया समझे तो क्या किन्तु भलीभाँति सुना तक नहीं है। 'समस्त पदार्थों में जैसा होना होता है, वैसा ही होता है।' यह निर्णय

करने पर एक पर्याय पर से दृष्टि हटकर त्रिकाल की ओर लम्बायमान होती है अर्थात् द्रव्यदृष्टि हो जाती है, अर्थात् पर को और अपने को वर्तमान पर्याय मात्र तक ही न माना किन्तु स्थायी माना। आत्मा का सदा का स्वभाव शुद्ध, रागरहित है; इसलिये वह जीव, राग का अकर्ता हुआ और पर पदार्थों को चिरस्थायी माना अर्थात् उन पदार्थों में उनकी त्रिकाल की पर्यायों की योग्यता विद्यमान है, तदनुसार ही उसकी अवस्था स्वतंत्रतया होती है।

इसप्रकार सम्यक् नियतिवाद के निर्णय में स्वतंत्रता की प्रतीति हुई। अपनी अवस्था का आधार द्रव्य है, और द्रव्यस्वभाव शुद्ध है–ऐसी प्रतीति के साथ 'जो होना हो सो होता है' इस प्रकार जो मानता है, सो वह जीव वीतरागदृष्टि है। यह नियतिवाद तो वीतरागता का कारण है।

नियतिवाद के दो प्रकार हैं—एक सम्यक् नियतिवाद और दूसरा मिथ्या नियतिवाद। सम्यक् नियतिवाद वीतरागता का कारण है, उसका स्वरूप ऊपर बताया है। कोई जीव इस प्रकार नियतिवाद को मानता तो है कि 'जैसा होना हो वैसा ही होता है' किन्तु पर का लक्ष और पर्याय दृष्टि को छोड़कर स्वभावोन्मुख नहीं होता; जो नियतिवाद का निश्चय करनेवाला अपना ज्ञान और पुरुषार्थ की स्वतंत्रता को स्वीकार न करे, पर के और विकार के कर्तृत्व के अभिमान को न छोड़े–इस प्रकार पुरुषार्थ को उड़ाकर स्वच्छन्दता से प्रवृत्ति करे–उसे गृहीत –मिथ्यादृष्टि कहा है।

'जो होना हो सो होता है' इस प्रकार मात्र परलक्ष से माना है, सो यथार्थ नहीं है, 'होना हो सो होता है' यदि ऐसा यथार्थ निर्णय हो तो जीव का ज्ञान, पर के प्रति उदासीन होकर अपने स्वभाव की ओर झुक जाये और उस ज्ञान में यथार्थ शांति हो जाये। उस ज्ञान के साथ ही पुरुषार्थ, नियति, काल, स्वभाव और कर्म–यह पाँचों समवाय आ जाते हैं।

२३- मिथ्या नियतिवाद के उपलक्षण

प्रश्न—मिथ्या नियतिवादी जीव भी जब परवस्तु बिगड़ जाती है अथवा नष्ट हो जाती है, तब यह मानकर शान्ति तो रखता ही है कि 'जैसा होना था सो हो गया' तब फिर उसके सम्यक् नियतिवाद का निर्णय क्यों न माना जाये ?

उत्तर—वह जीव जो शांति रखता है, सो यथार्थ नहीं है किन्तु मन्दकषायरूप शांति है। यदि नियतिवाद का यथार्थ निर्णय हो तो, जिस प्रकार उस एक पदार्थ का जैसा होना था, सो हुआ; उसी प्रकार समस्त पदार्थों का जैसा होना हो, सो वैसा ही होता है–ऐसा भी निर्णय होना चाहिये और यदि ऐसा हो तो फिर यह सब मान्यता दूर हो जाती है कि 'मैं परद्रव्य का निमित्त होऊं तो उसका कार्य

ही, निमित्त हो तो ही कार्य होता है, किसी समय निमित्त की प्रबलता होती है।' 'सब नियत है' अर्थात् जिस कार्य में जिस समय जिस निमित्त की उपस्थिति रहनी हो, उस कार्य में उस समय निमित्त स्वयमेव होता ही है। तब फिर ऐसी मान्यताओं को अवकाश ही कहाँ रहेगा कि 'निमित्त मिलाना चाहिये' अथवा निमित्त की उपेक्षा नहीं की जा सकती अथवा निमित्त न हो तो कार्य नहीं होता। यदि सम्यक् नियतिवाद का निर्णय हो तो निमित्ताधीन दृष्टि दूर हो जाती है।

२४- मिथ्या नियतिवाद को 'गृहीत' मिथ्यात्व क्यों कहा है ?

प्रश्न—मिथ्या नियतिवाद को गृहीत मिथ्यात्व क्यों कहा है ?

उत्तर—निमित्त से धर्म होता है, राग से धर्म होता है, शरीरादि का आत्मा कुछ कर सकता है —ऐसी मान्यता के रूप में अगृहीत मिथ्यात्व अनादि काल से था और जन्म के बाद शास्त्रों को पढ़कर अथवा कुगुरु इत्यादि के निमित्त से मिथ्या नियतिवाद का नवीन कदाग्रह ग्रहण किया; इसलिये उसे गृहीतमिथ्यात्व कहा जाता है। पहले जिसे अनादिकालीन अगृहीत मिथ्यात्व होता है उसी को गृहीतमिथ्यात्व होता है। जीव, इन्द्रिय विषयों की पुष्टि के लिये 'जो होना होगा सो होगा'—ऐसा कह कर शाता में रंजित होने की आदत से एक स्वच्छन्दता का मार्ग ढूंढ निकालते हैं, उसका नाम गृहीतमिथ्यात्व है, और यह सम्यक् नियतिवाद तो स्वभाव भाव है, स्वतंत्रता है, वीतरागता है।

२५- सम्यक् नियतिवाद के निर्णय से निमित्ताधीन दृष्टि और स्व-पर की एकत्व बुद्धि दूर हो जाती है

जिस वस्तु में जिस समय जैसी पर्याय होनी हो और जिस निमित्त की उपस्थिति में होनी हो, उस वस्तु में उस समय वैसी पर्याय होती ही है और वे निमित्त ही उस समय होते हैं, न तो दूसरी पर्याय होती है और न दूसरा निमित्त होता है। इस नियम में तीन लोक और तीन काल में कोई परिवर्तन नहीं होता। यही यथार्थ नियति का निर्णय है, इसमें आत्मस्वभाव के श्रद्धा, ज्ञान, चारित्र आ जाते हैं, और निमित्त ऊपर की दृष्टि दूर हो जाती है। जिसकी ऐसी मान्यता है कि 'मैं पर का कर्ता तो नहीं हूँ किन्तु मैं पर का निमित्त होऊं' वह मिथ्यादृष्टि है। स्वयं निमित्त है, इसलिये पर का कार्य होता है-ऐसी बात नहीं है, किन्तु प्रस्तुत वस्तु में उसकी योग्यता से जो कार्य होता है, उसमें अन्य वस्तु को निमित्त कहा जाता है। 'मैं निमित्त होऊं' इसका अर्थ यह हुआ कि वस्तु में कार्य नहीं होना था किन्तु मैं निमित्त हुआ, तब उसमें कार्य हुआ अर्थात् वह तो स्व-पर की एकत्वबुद्धि ही हुई।

२६- लकड़ी अपने आप ऊंची उठती है, हाथ के निमित्त से नहीं

'यह लकड़ी है, इसमें ऊपर उठने की योग्यता है, किन्तु जब मेरा हाथ उसे स्पर्श करता है, तब वह उठती है अर्थात् जब मेरा हाथ उसके लिये निमित्त होता है, तब वह उठती है' ऐसा मानने वाले जीव, वस्तु की पर्याय को स्वतंत्र नहीं मानते अर्थात् उनकी संयोगीदृष्टि है; वे वस्तु के स्वभाव को ही नहीं मानते, इसलिये मिथ्यादृष्टि है। जब लकड़ी ऊपर नहीं उठती, तब उसमें ऊपर उठने की योग्यता ही नहीं है, और जब उसमें योग्यता होती है, तब वह स्वयं ऊपर उठती है, वह हाथ के निमित्त से ऊपर नहीं उठती, किन्तु जब वह ऊपर उठती है, तब हाथ इत्यादि निमित्त स्वयमेव होते ही हैं। इस प्रकार उपादान-निमित्त का मेल स्वभाव से ही होता है। निमित्त का ज्ञान कराने के लिये यों कहने का मात्र व्यवहार है कि 'हाथ के निमित्त से लकड़ी ऊपर उठी है।'

२७- लोहचुम्बक सुई को नहीं खींचता

लोहचुम्बक की ओर लोहे की सुई खिंचती है, वहाँ लोहचुम्बक सुई को नहीं खींचता किन्तु सुई अपनी योग्यता से ही गमन करती है।

प्रश्न—यदि सुई अपनी योग्यता से ही गमन करती हो तो जब लोहचुम्बक उसके पास नहीं था, तब उसने गमन क्यों नहीं किया? और जब लोहचुम्बक निकट आया तभी क्यों गमन किया?

उत्तर—पहले सुई में गमन करने की योग्यता ही नहीं थी, इसलिये उस समय लोहचुम्बक उसके पास (सुई को खींचने योग्य क्षेत्र में) हो ही नहीं सकता। और जब सुई में क्षेत्रान्तर करने की योग्यता होती है, तब लोहचुम्बक और उसके बीच अन्तराय हो ही नहीं सकता। ऐसा ही उपादान निमित्त का संबन्ध है कि दोनों का मेल होता है। तथापि एक दूसरे के कारण से किसी की क्रिया नहीं होती। सुई की गमन करने की योग्यता हुई, इसलिये लोह चुम्बक निकट आया-यह बात नहीं है और लोह चुम्बक निकट आया, इसलिये सुई खिंच गई—ऐसा भी नहीं है; किन्तु जब सुई की क्षेत्रान्तर की योग्यता होती है, उसी समय लोहचुम्बक में उस क्षेत्र में ही रहने की योग्यता होती है—इसी का नाम निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

२८- निमित्तपन की योग्यता

प्रश्न—जब कि लोह चुम्बक सुई में कुछ भी नहीं करता तो फिर उसी को निमित्त क्यों कहा है? अन्य सामान्य पत्थर को निमित्त क्यों नहीं कहा? जैसे लोहचुम्बक सुई में कुछ नहीं करता, तथापि वह निमित्त कहलाता है, तब फिर लोहचुम्बक की भाँति अन्य पत्थर भी सुई में कुछ नहीं करते, तथापि उन्हें निमित्त क्यों नहीं कहा जाता?

उत्तर—उस समय उस कार्य में लोहचुम्बक पत्थर में ही निमित्तपन की योग्यता है, अर्थात् उपादान के कार्य के लिये अनुकूलता का आरोप की जाने योग्य योग्यता लोहचुम्बक की उस समय की पर्याय में है, दूसरे पत्थर में वैसी योग्यता उस समय नहीं है। जैसे सुई में उपादानता की योग्यता है, इसलिये वह खिंचती है; इसीप्रकार उसी समय लोहचुम्बक में निमित्तपन की योग्यता है, इसलिये उसे निमित्त कहा जाता है। एक समय की उपादान की योग्यता उपादान में है, और एक समय की निमित्त की योग्यता निमित्त में है; किन्तु दोनों की योग्यता का मेल है, इसलिये अनुकूल निमित्त कहलाता है। लोहचुम्बक में निमित्तपन की जो योग्यता है, उसे अन्य समस्त पदार्थों से पृथक् करके पहिचानने के लिये उसे 'निमित्त' कहा जाता है, किन्तु उसके कारण से सुई में किंचित् विलक्षणता नहीं होती। जब उपादान में कार्य होता है, तब व्यवहार से आरोप से दूसरे पदार्थ को निमित्त कहा जाता है। ज्ञान का स्वभाव स्व-पर प्रकाशक है, इसलिये वह उपादान और निमित्त दोनों को जानता है।

२९- निमित्त का स्वरूप समझने के लिये धर्मास्तिकाय का दृष्टान्त

सभी निमित्त 'धर्मास्तिकायवत्' हैं (देखो इष्टोपदेश गाथा ३५) धर्मास्तिकाय पदार्थ लोक में सर्वत्र है। जब वस्तु अपनी योग्यता से चलती है, तब धर्मास्तिकाय को निमित्त कहा जाता है, और जब वस्तु नहीं चलती तो उसे निमित्त नहीं कहा जाता। धर्मास्तिकाय की भाँति ही समस्त निमित्तों का स्वरूप समझना चाहिये। धर्मास्तिकाय में निमित्तपन की ऐसी योग्यता है कि पदार्थ गति करते हैं, तब उन्हीं में उसे निमित्त कहा जाता है, किन्तु स्थिति में उसे निमित्त नहीं कहा जाता; स्थिति में निमित्त कहलाने की योग्यता तो अधर्मास्तिकाय में है।

३०- सिद्ध भगवान अलोक में क्यों नहीं जाते ?

सिद्ध भगवान अपनी क्षेत्रान्तर की योग्यता से जब एक समय में लोकाग्र में गमन करते हैं, तब धर्मास्तिकाय को निमित्त कहा जाता है, परन्तु कहीं धर्मास्तिकाय के अभाव के कारण उनका अलोक में गमन नहीं होता-ऐसी बात नहीं है; वे लोकाग्र में स्थित होते हैं, सो वह भी उनकी ही वैसी योग्यता है उस कारण से है, उस समय अधर्मास्तिकाय को निमित्त कहा जाता है।

प्रश्न—सिद्ध भगवान लोकाकाश के बाहर गमन क्यों नहीं करते ?

उत्तर—उनकी योग्यता ही ऐसी है; क्योंकि वह लोक का द्रव्य है और उसकी योग्यता लोक के अन्त तक ही जाने की है, लोकाकाश से बाहर जाने की उन में योग्यता ही नहीं है।

'अलोक में धर्मास्तिकाय का अभाव है, इसलिये सिद्ध वहाँ गमन नहीं करते' ('धर्मास्तिकाया -भावार्थ') यह मात्र व्यवहारनय का कथन है, अर्थात् उपादान में स्वयं अलोकाकाश में जाने की योग्यता नहीं होती, तब निमित्त भी नहीं होता—ऐसा उपादान-निमित्त का मेल बताने के लिये वह कथन है।

३१- प्रत्येक पदार्थ का कार्य स्वतंत्र है

किसी ने अपने मुनीम को पत्र लिखा कि पाँच हजार रुपया बैंक में जमा करा देना, और मुनीम ने बैंक में रुपया जमा करा दिया। यहाँ पर जीव ने पत्र लिखने का विकल्प किया, इसलिये पत्र लिखा गया—ऐसी बात नहीं है और ऐसा भी नहीं है कि पत्र आया, इसलिये मुनीम के बैंक में रुपया जमा कराने का विकल्प हुआ; और ऐसा भी नहीं है कि मुनीम के विकल्प उठा, इसलिये बैंक में रुपया जमा हुये। इसी प्रकार रुपया बैंक में जमा होना थे, इसलिये मुनीम के मन में विकल्प उठा-ऐसा भी नहीं है, इसी प्रकार प्रत्येक में समझ लेना चाहिये। इस प्रकार जीव का विकल्प स्वतंत्र है, पत्र की अवस्था स्वतंत्र है, मुनीम का विकल्प स्वतंत्र है और रुपया की अवस्था स्वतंत्र है; जब मुनीम को विकल्प उठा, तब पत्र निमित्त कहलाया, तथा बैंक में जाने की रुपयों की अवस्था हुई, तब मुनीम के विकल्प को उसका निमित्त कहा गया।

३२- निमित्त के कारण उपादान में विलक्षण दशा नहीं होती

प्रश्न—उपादान में निमित्त कुछ नहीं करता, यह बात सच है किन्तु जब निमित्त होता है, तब उपादान में विलक्षण अवस्था तो होनी ही चाहिये। जैसे अग्निरूपी निमित्त के आने पर पानी को उष्ण होना ही चाहिये।

उत्तर—यह बात गलत है; जिस पानी की पर्याय का स्वभाव उसी समय गर्म होने का था, वही पानी उसी अग्नि के संयोग में आया और अपनी योग्यता से स्वयं ही गर्म हुआ है, अग्नि के कारण उसे विलक्षण होना पड़ा हो, सो बात नहीं है और अग्नि ने पानी को गर्म नहीं किया है।

३३- मिथ्यादृष्टि संयोग को देखता है, और सम्यक्दृष्टि स्वभाव को देखता है

'अग्नि से पानी गर्म हुआ है'—ऐसी जो मान्यता है, सो संयोगाधीन पराधीनदृष्टि है, और पानी अपनी योग्यता से ही गर्म हुआ है—ऐसी जो मान्यता है, सो स्वतंत्र स्वभावदृष्टि है। जो संयोगाधीन दृष्टि है, सो मिथ्यादृष्टि है और जो स्वभावदृष्टि है, सो सम्यक्दृष्टि है।

मिथ्यादृष्टि जीव, वस्तु के स्वभाव के समय-समय की योग्यता से प्रत्येक कार्य होता है,

उस स्वभाव को नहीं देखता किन्तु निमित्त के संयोग को देखता है, यही उस की पराधीनदृष्टि है और उस दृष्टि से कभी भी पर में एकत्वबुद्धि दूर नहीं होती। सम्यक् दृष्टि जीव, स्वतंत्र वस्तु स्वभाव को देखता है कि प्रत्येक वस्तु की समय-समय की योग्यता से ही उसका कार्य स्वतंत्रता से होता है।

३४- उपादान और निमित्त दोनों की स्वतंत्र योग्यता (वस्त्र और अग्नि)

वस्त्र तें जिस समय जिस क्षेत्र में जिस संयोग में जलने की योग्यता होती है, उस समय उस क्षेत्र में उस संयोग में उसकी जलने की पर्याय होती है, और अग्नि उस समय स्वयं होती है। अग्नि आई, इसलिये वस्त्र जल गया—ऐसी बात नहीं है और ऐसा भी नहीं है कि वस्त्र में जल जाने की अवस्था होने की योग्यता हो किन्तु अग्नि या दूसरा योग्य संयोग न मिले तो वह अवस्था रुक जाती है। जिस समय योग्यता होती है, उसी समय वह अवश्य जलता है और उस समय अग्नि भी उपस्थित होती है। तथापि अग्नि की उपस्थिति के कारण से वस्त्र की अवस्था में कोई भी विलक्षणता नहीं होती। यह मान्यता मिथ्यात्व है कि अग्नि ने वस्त्र को जला दिया है।

यदि कोई पूछे कि-वस्त्र के जलते समय अमुक ही अग्नि थी और दूसरी अग्नि नहीं थी, इसका क्या कारण है? तो उसका उत्तर यह है कि उस समय जो अग्नि थी, उसी अग्नि की निमित्तता की योग्यता थी, दूसरी अग्नि हो ही नहीं सकती क्योंकि उसमें निमित्तता की योग्यता ही नहीं थी। उपादान के समय जिस निमित्त की योग्यता होती है, वह निमित्त ही होता है दूसरा हो ही नहीं सकता। सब की अपने कारण से अपनी अवस्था हो रही है, वहाँ अज्ञानी यह मानता है कि 'यह निमित्त से हुआ है अथवा निमित्त ने किया है।'

३५- उपादान और निमित्त दोनों की स्वतंत्र योग्यता [आत्मा और कर्म]

आत्मा अपनी पर्याय में जब राग-द्वेष करता है, तब कर्म के जिस परमाणुओं की योग्यता होती है, वे उदयरूप होते हैं, कर्म न हों, ऐसा नहीं हो सकता; किन्तु कर्म उदय में आया, इसलिये जीव के राग-द्वेष हुआ, यह मान्यता मिथ्या है। और राग-द्वेष किया, इसलिये कर्म आया, यह मान्यता भी मिथ्या है। जीव के अपने पुरुषार्थ की अशक्ति से राग-द्वेष होने की योग्यता थी, इसीलिये राग-द्वेष हुये हैं और उस समय जिन कर्मों में योग्यता थी, वे कर्म उदय में आये हैं और उन्हीं को निमित्त कहा जाता है; किन्तु उस कर्म के कारण जीव की पर्याय में राग-द्वेष या विलक्षणता नहीं हुई है।

जब ज्ञान की पर्याय अपूर्ण हो, तब ज्ञानावर्ण कर्म में ही निमित्तपन की योग्यता है। जीव की

पर्याय में जब जीव मोह करता है, तब मोहकर्म को ही निमित्त कहा जाता है, ऐसी उन कर्म परमाणुओं की योग्यता है। जैसे उपादान में प्रति समय स्वतंत्र योग्यता है, उसी प्रकार निमित्त के रूप में मोहकर्म के प्रत्येक परमाणु में समय-समय की स्वतंत्र योग्यता है।

प्रश्न—क्या यह सच नहीं है कि जीव ने राग-द्वेष किये, इसलिये परमाणुओं में कर्म अवस्था हुई है।

उत्तर—नहीं; अमुक परमाणु ही कर्मरूप हुए और जगत के दूसरे परमाणु क्यों नहीं हुए?—इसलिये जिन-जिन परमाणुओं में योग्यता थी, वही परमाणु कर्मरूप परिणत हुए हैं। वे अपनी योग्यता से ही कर्मरूप हुए हैं, जीव के राग-द्वेष के कारण नहीं।

३६- परमुखापेक्षी नहीं होना है, किन्तु अपने पर ही देखना है

प्रश्न—जब परमाणुओं में कर्मरूप होने की योग्यता होती है, तब आत्मा को राग-द्वेष करना ही चाहिये, क्योंकि परमाणुओं में कर्मरूप होने का उपादान है, इसलिये वहाँ जीव के विकाररूप निमित्त होना ही चाहिये, यह बात ठीक है?

उत्तर—यह प्रश्न ही अज्ञानी का है। तुझे अपने स्वभाव में देखने का काम है या परमाणु में देखने का काम है? जिसकी स्वतंत्र दृष्टि हो गई है, वह आत्मा की ओर देखता है और जिसकी दृष्टि निमित्ताधीन है, वह परमुखापेक्षी होता है। जिसने यह यथार्थ निर्णय किया है कि 'जब जिस वस्तु की जो अवस्था होनी हो, वही होती है' उसके द्रव्यदृष्टि होती है-स्वभावदृष्टि होती है। उसके स्वभावदृष्टि में तीव्ररागादि होते ही नहीं, और उस जीव के निमित्त से तीव्र कर्मरूप परिणमित होने की योग्यतावाले परमाणु ही इस जगत में नहीं होते। जीव ने अपने स्वभाव के पुरुषार्थ से सम्यक्दर्शन प्रगट किया, वहाँ उस जीव के लिये मिथ्यात्वादि कर्मरूप से परिणमित होने की योग्यता विश्व के किसी परमाणु में होती ही नहीं है। सम्यक्दृष्टि के जो अल्प राग द्वेष है, वह अपनी वर्तमान पर्याय की योग्यता से है, उस समय अल्प कर्मरूप से बंधने की परमाणु की पर्याय में योग्यता है। इस प्रकार स्वलक्ष से प्रारम्भ करना है।

'जगत के परमाणुओं में मिथ्यात्वादि कर्मरूप होने की योग्यता है, इसलिये जीव के मिथ्यात्वादि भाव होना ही चाहिये'—जिसकी ऐसी मान्यता है, वह जीव, स्वद्रव्य के स्वभाव को नहीं जानता, और इसलिये उस जीव के निमित्त से मिथ्यात्वादिरूप परिणमित होने योग्य परमाणु इस जगत में विद्यमान हैं-ऐसा जानना चाहिये। किन्तु स्वभावदृष्टि से देखनेवाले जीव के मिथ्यात्व

होता ही नहीं और उस जीव के निमित्त से मिथ्यात्वादिरूप परिणमित होने की योग्यता ही जगत के किसी परमाणु में नहीं होती। स्वभावदृष्टि से ज्ञानी, विकार के अकर्ता हो गये हैं, इसलिये यह बात ही मिथ्या है कि 'ज्ञानी को विकार करना पड़ता है।' जो अल्प विकार होता है, सो भी स्वभावदृष्टि के बल से पुरुषार्थ के द्वारा दूर ही होता जाता है। ऐसी स्वतंत्र स्वभावदृष्टि (सम्यक् श्रद्धा) किये बिना जीव जो कुछ शुभभावरूप व्रत, तप, त्याग करता है, वह सब 'अरण्य रोदन' के समान मिथ्या है।

३७- 'फूंक से पर्वत को उड़ाने की बात!'

शंका—'वस्तु में जब जो पर्याय होनी होती है, सो होती है और तब निमित्त अवश्य होता है, किन्तु निमित्त कुछ नहीं करता और निमित्त के द्वारा कोई कार्य नहीं होता' यह तो फूंक से पर्वत को उड़ाने जैसी बात है।

समाधान—हे भाई! यहाँ फूंक से पर्वत को उड़ाने की बात नहीं है। पर्वत के अनन्त परमाणुओं में उड़ने की योग्यता हो तो पर्वत अपने आप उड़ता है। पर्वत को उड़ने के लिये फूंक की भी आवश्यकता नहीं होती। यहाँ किसी के मन को यह हो सकता है कि 'अरे! यह कैसी बात है! क्या पर्वत भी अपने आप उड़ते होंगे?' किन्तु भाई! वस्तु में जो काम होता है (जो पर्याय होती है), वह उसकी अपनी ही शक्ति से योग्यता से होती है। वस्तु की शक्तियों अन्य की अपेक्षा नहीं रखती। परवस्तु का उसमें अभाव है तो वह क्या करे?

३८- उदासीन निमित्त और प्रेरक निमित्त

प्रश्न—निमित्त के दो प्रकार हैं—एक उदासीन दूसरा प्रेरक, इनमें से उदासीन निमित्त कुछ नहीं करता परन्तु प्रेरक निमित्त तो उपादान को कुछ प्रेरणा करता है?

उत्तर—निमित्त के भिन्न-भिन्न प्रकार बताने के लिये यह दो भेद हैं किन्तु उनमें से कोई भी निमित्त, उपादान में कुछ भी नहीं करता अथवा निमित्त के कारण से उपादान में कोई विलक्षणता नहीं आती। प्रेरक निमित्त भी प्रेरणा नहीं करता। सभी निमित्त धर्मास्तिकायवत् हैं।

प्रश्न—प्रेरक निमित्त और उदासीन निमित्त की क्या परिभाषा है?

उत्तर—उपादान की अपेक्षा से तो दोनों पर हैं, दोनों अकिंचित्कर हैं; इसलिये दोनों समान हैं। निमित्त की अपेक्षा से यह दो भेद हैं। जो निमित्त स्वयं इच्छावान वा गतिमान होता है, वह प्रेरक निमित्त कहलाता है और जो निमित्त स्वयं स्थिर या इच्छारहित होता है, वह उदासीन निमित्त

कहलाता है। इच्छावान जीव और गतिमान अजीव प्रेरक निमित्त हैं और इच्छारहित जीव तथा गतिहीन अजीव उदासीन निमित्त है, परन्तु दोनों प्रकार के निमित्त, पर में बिल्कुल कार्य नहीं करते। जब घड़ा बनता है, तब उसमें कुम्हार और चाक प्रेरक निमित्त हैं तथा धर्मास्तिकाय इत्यादि उदासीन निमित्त हैं।

यह बात सच नहीं है कि भगवान महावीर के समवसरण में गौतम गणधर के आने से दिव्यध्वनि खिरी और पहले ६६ दिन तक उनके न आने से भगवान की ध्वनि खिरने से रूकी रही। वाणी के परमाणुओं में जिस समय वाणीरूप से परिणमित होने की योग्यता थी, उस समय ही वे वाणीरूप में परिणमित हुऐ; और उस समय वहाँ गणधरदेव की अवश्यम्भावी उपस्थिति थी। गणधर आये, इसलिये वाणी छूटी-ऐसी बात नहीं हैं। गणधर जिस समय आये, उसी समय उनकी आने की योग्यता थी। ऐसा ही सहज निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। इसलिये इस तर्क को अवकाश ही नहीं है कि यदि गौतम गणधर न आये होते तो वाणी कैसे छूटती ?

३९- निमित्त न हो तो..... ?

'कार्य होना हो और निमित्त न हो तो... ?' ऐसी शंका करनेवाले से ज्ञानी पूछते हैं कि 'हे भाई! इस जगत में तू जीव ही न होता हो ? अथवा तू अजीव होता तो ?' तब शंकाकार उत्तर देता है कि—'मैं जीव ही हूँ, इसलिये दूसरे तर्क को स्थान नहीं है।' तब ज्ञानी कहते हैं कि—जैसे तू स्वभाव से ही जीव है, इसलिये उसमें दूसरे तर्क को स्थान नहीं है; इसी प्रकार 'जब उपादान में कार्य होता है, तब निमित्त उपस्थित ही है'—ऐसा ही उपादान-निमित्त का स्वभाव है, इसलिये उसमें दूसरे तर्क को अवकाश नहीं है।

४०- कमल में विकसित होने की योग्यता हो किंतु यदि सूर्योदय न हो तो ?

कमल के खिलने और सूर्य के उदय होने में सहज निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है; किन्तु सूर्य का उदय हुआ, इसलिये कमल नहीं खिला है, वह तो अपनी उस पर्याय की योग्यता से खिला है।

प्रश्न—यदि सूर्योदय न हो, तब तो कमल नहीं खिलेगा ?

उत्तर—'कार्य होना हो किन्तु निमित्त न हो तो' ऐसा ही यह प्रश्न है। इसका समाधान उपरोक्त युक्ति के अनुसार समझ लेना चाहिये; जब कमल में खिलने की योग्यता होती है, तब सूर्य में भी अपने ही कारण से उदित होने की अवश्यम्भावी योग्यता होती है-ऐसा स्वभाव है। कमल में

विकसित होने की योग्यता हो और सूर्य में उदित होने की योग्यता न हो—ऐसा कभी हो ही नहीं सकता। तथापि सूर्य के निमित्त से कमल नहीं खिलता और कमल खिलना है, इसलिये सूर्य उदय होता है—ऐसा भी नहीं है।

४१- जब सूर्योदय होता है, तभी कमल खिलता है, इसका क्या कारण है ?

प्रश्न—यदि सूर्य के निमित्त से कमल न खिलता हो तो इसका क्या कारण है कि जब सूर्योदय छह बजे होता है, तब कमल भी छह बजे खिलता है और जब सूर्योदय सात बजे होता है, तब कमल भी सात बजे खिलता है ?

उत्तर—उसी समय कमल में खिलने की योग्यता है, इसलिये वह तभी खिलता है। पहले उसमें अपने में ही खिलने की योग्यता नहीं थी, और उसकी योग्यता बन्द रहने की ही थी। एक समय में दो विरुद्ध प्रकार की पर्याय की योग्यता नहीं हो सकती।

४२- यह जैनदर्शन का मूल रहस्य हैं

अहो ! स्वतंत्र निरपेक्ष वस्तु स्वभाव है; इस स्वभाव को जब तक न जान ले, तब तक जीव को पर के अहंकार से सच्ची उदासीनता नहीं होती, वह विकार का स्वामी नहीं मिटता और अपनी पर्याय का स्वामी (आधार) जो आत्मस्वभाव है, उसकी दृष्टि नहीं होती। यह स्वतंत्रता जैनदर्शन का मूल रहस्य है।

४३- एक परमाणु की स्वतंत्र शक्ति

प्रत्येक जीव तथा अजीव द्रव्यों की पर्याय स्वतंत्रतया अपने से ही होती है। एक परमाणु भी अपनी ही शक्ति से परिणमित होता है; उसमें निमित्त का क्या प्रयोजन है ? एक परमाणु पहले समय में काला होता है और दूसरे समय में धोला हो जाता है; तथा पहले समय में एक अंश काला और दूसरे समय में अनन्त गुना काला हो जाता है। इसमें निमित्त किसे कहोगे ? वह अपनी योग्यता से परिणमित होता है।

४४- इन्द्रियों और ज्ञान का स्वतंत्र परिणमन : निमित्त-नैमित्तिक संबंध का स्वरूप

यह बात मिथ्या है कि जड़ इन्द्रियों है, इसलिये आत्मा को ज्ञान होता है। आत्मा का त्रिकाल सामान्य ज्ञानस्वभाव अपने कारण से प्रतिसमय परिणमित होता है, और जिस पर्याय में जैसी योग्यता होती है, उतना ही ज्ञान का विकास होता है। पंचेन्द्रिय सम्बन्धी ज्ञान का विकास है; इसलिये पाँच बाह्य इन्द्रियाँ हैं—ऐसी बात नहीं है, और पाँच इन्द्रियाँ हैं, इसलिये ज्ञान का विकास

है—ऐसा भी नहीं है। ज्ञान की पर्याय में जितनी योग्यता थी, उतना विकास हुआ है, और जिन परमाणुओं में इन्द्रियरूप से होने की योग्यता थी, वे स्वयं इन्द्रियरूप से परिणमित हुये हैं। तथापि दोनों का निमित्त-नैमित्तिक मेल है। जिस जीव के एकेन्द्रिय के ज्ञान का विकास होता है, उसके एक ही इन्द्रिय होती है, दो वाले के दो, तीनवाले के तीन, चारवाले के चार और पंचेन्द्रिय के विकास वाले के पाँचों ही इन्द्रियाँ होती हैं; वहाँ दोनों का स्वतंत्र परिणमन है, एक के कारण दूसरे में कुछ नहीं हुआ है। इसी को निमित्त-नैमित्तिक संबंध कहते हैं।

४५- रागद्वेष का कारण कौन है ? सम्यक्दृष्टि के रागद्वेष क्यों होता है ?

प्रश्न—यदि कर्म, आत्मा को विकार न कराते हों तो आत्मा में विकार होने का कारण कौन है ? सम्यक्दृष्टि जीवों के विकार करने की भावना नहीं होती, तथापि उनके भी विकार होता है; इसलिये कर्म विकार कराते हैं न ?

उत्तर—कर्म, आत्मा को विकार कराता है, यह बात गलत है। आत्मा को अपनी पर्याय के दोष से ही विकार होता है। कर्म, विकार नहीं कराता किन्तु आत्मा की पर्याय की वैसी योग्यता है। सम्यक्दृष्टि के रागद्वेश करने की भावना नहीं है तथा रागद्वेष होता है, इसका कारण चारित्रगुण की वैसी पर्याय की योग्यता है। रागद्वेष की भावना नहीं है, सो तो श्रद्धागुण की पर्याय है। पुरुषार्थ की अशक्ति से रागद्वेष होता है, यह कहना भी निमिततताधीन कथन है। वास्तव में तो चारित्रगुण की ही उस उस समय की योग्यता के कारण ही रागद्वेष होता है।

४६- सम्यक् निर्णय का फल

प्रश्न—जो विकार होता है, सो चारित्रगुण की पर्याय की ही योग्यता है, तब फिर जहाँ तक चारित्रगुण की पर्याय में विकार होने की योग्यता हो, वहाँ तक विकार होता ही रहे; और ऐसा होने पर विकार को दूर करना जीव के आधीन कहाँ रहेगा ?

उत्तर—प्रत्येक समय की स्वतंत्र योग्यता है—ऐसा निर्णय किस ज्ञान में किया है ? त्रिकाल स्वभाव की ओर उन्मुख हुए बिना ज्ञान में एक-एक समय की पर्याय की स्वतंत्रता का निर्णय नहीं हो सकता; और जहाँ ज्ञान त्रिकाल स्वभाव में उन्मुख हुआ, वहाँ स्वभाव की प्रतीति के बल से पर्याय में से राग-द्वेश होने की योग्यता प्रतिक्षण घटती ही जाती है। जिसने स्वभाव का निर्णय किया, उसकी पर्याय में अधिक समय तक राग-द्वेष रहे—ऐसी योग्यता कदापि नहीं होती, ऐसा ही सम्यक् निर्णय का बल है।

४७- कार्य में निमित्त कुछ नहीं करता, तथापि उसे 'कारण' क्यों कहा है ?

कार्य के दो कारण कहे गये हैं, इन में से एक उपादानकारण है, वही यथार्थ कारण है; दूसरा निमित्तकारण है जो कि आरोपित कारण है। उपादान और निमित्त इन दो कारणों के कहने का आशय ऐसा नहीं है कि दोनों एकत्रित होकर कार्य करते हैं। जब उपादानकारण स्वयं कार्य करता है, तब दूसरी वस्तु पर आरोप करके उसे निमित्त कारण कहा जाता है किन्तु वास्तव में वह कारण नहीं है।

प्रश्न—जब कि निमित्त वास्तव में कारण नहीं है, तब फिर उसे कारण क्यों कहा है ?

उत्तर—जिसे निमित्त कहा जाता है, उस पदार्थ में उस प्रकार की (निमित्तरूप होने की) योग्यता है, इसलिये अन्य पदार्थों से उसे पृथक् पहिचानने के लिये उसे 'निमित्तकारण' की संज्ञा दी गई है। ज्ञान का स्वभाव स्व-पर प्रकाशक है, इसलिये वह पर को भी जानता है, और पर में जो निमित्तपन की योग्यता है, उसे भी जानता है।

४८- कर्म के उदय के कारण जीव को विकार नहीं होता

जब जीव की पर्याय में विकार होता है, तब कर्म निमित्तरूप में होता है, किन्तु जीव की पर्याय और कर्म दोनों मिलकर विकार नहीं करते। कर्मोदय के कारण विकार नहीं होता और विकार किया, इसलिये कर्म उदय में आये-ऐसा भी नहीं है। तथा जीव विकार न करे, तब कर्म खिर जाते हैं, उसे निमित्त कहते हैं। किन्तु यह बात ठीक नहीं है कि जीव ने विकार नहीं किया, इसलिये कर्म खिर गये हैं; उन परमाणुओं की योग्यता ही ऐसी थी।

जिस द्रव्य की जिस समय, जिस क्षेत्र में, जिस संयोग में, और जिस प्रकार, जैसी अवस्था होनी हो, वैसी उस प्रकार अवश्य होती है, उसमें अन्तर हो ही नहीं सकता—उस श्रद्धा में तो वीतरागीदृष्टि हो जाती है। स्वभाव की दृढ़ता और स्थिरता की एकता है तथा विकार से उदासीनता और पर से भिन्नता है; उस में प्रतिसमय भेदविज्ञान का ही कार्य है।

४९- नैमित्तिक की व्याख्या

प्रश्न—नैमित्तिक का अर्थ व्याकरण के अनुसार तो ऐसा होता है कि जो निमित्त से होता है सो नैमित्तिक है। और यहाँ तो यह कहा है कि निमित्त से नैमित्तिक में कुछ नहीं होता। इसका क्या कारण है ?

उत्तर—'जो निमित्त से होता है, सो नैमित्तिक है, अर्थात् निमित्त जनक और नैमित्तिक जन्य

है;' यह परिभाषा व्यवहार से की गई है। वास्तव में निमित्त से नैमित्तिक नहीं होता; किन्तु उपादान का जो कार्य है, सो नैमित्तिक है और जब नैमित्तिक कार्य होता है, तब निमित्त होता ही है, इसलिये उपचार से उस निमित्त को जनक भी कहा जाता है; और नैमित्तिक का अर्थ ऐसा भी होता है कि 'जिस में निमित्त का सम्बन्ध हो, सो नैमित्तिक है।' अर्थात् जब नैमित्तिक होता है, तब निमित्त भी अवश्यमेव होता है, इतना सम्बन्ध है किन्तु यदि निमित्त, नैमित्तिक में कुछ भी करे तो उनमें निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध न रहे, किन्तु कर्ताकर्म सम्बन्ध हो जाये।

५०- 'निमित्त की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये किन्तु निमित्त मिलाना चाहिये' यह मान्यता मिथ्या है

प्रश्न—किसी के पुत्र होना था किन्तु दस वर्ष तक विषय भोग नहीं किया, अर्थात् पुत्र होने का निमित्त नहीं मिलाया, इसलिये पुत्र नहीं हुआ, अतः निमित्त मिलाना चाहिये; निमित्त के रास्ते उपादान का कार्य होता है, हमें निमित्त की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये-यह बात ठीक है न ?

उत्तर—यह बात मिथ्या है। मैं निमित्त मिलाऊं तो कार्य हो, यह बात ठीक नहीं है; इसमें मात्र निमित्ताधीन दृष्टि है। (पुत्र होने के सम्बन्ध में पहले कहा जा चुका है; देखो पैरा ९) निमित्त नहीं था, इसलिये कार्य रुक गया और निमित्त मिलाऊँ तो कार्य हो-यह बात त्रिकाल में भी सच नहीं है। किन्तु कार्य होना ही न था, इसलिये तब निमित्त नहीं था और जब कार्य होता है, तब निमित्त अवश्य होता है। यह अबाधित नियम है। पर निमित्तों को आत्मा प्राप्त कर सकता है-ऐसा मानना सो मिथ्यात्व है।

इस प्रकार आत्मा को अपने कार्य में पर की अपेक्षा नहीं है, तथापि कोई यह माने कि—'हमें निमित्त की उपेक्षा नहीं करनी चाहिये' तो वह जीव सदा निमित्त की ओर ही देखा करे अर्थात् उसकी दृष्टि सदा दूसरे पर ही रहा करे और वह पर की उपेक्षा करके स्वभाव का निर्मल कार्य प्रगट नहीं कर सकेगा। निमित्त के मार्ग से उपादान कार्य कभी नहीं होता, किन्तु उपादान की योग्यता से ही (उपादान के मार्ग से ही) उसका कार्य होता है।

५१- जिनशासन निमित्त की उपेक्षा करने को कहता है

निमित्त की उपेक्षा न करे अर्थात् परद्रव्य साथ का सम्बन्ध न तोड़े, यह बात जैनशासन से विरुद्ध है। जैनशासन का प्रयोजन दूसरे के साथ सम्बन्ध कराना नहीं किन्तु दूसरे के साथ का सम्बन्ध छुड़ाकर वीतरागभाव कराना है। समस्त सत्शास्त्रों का तात्पर्य वीतरागभाव है और वह

वीतरागभाव, स्वभाव के लक्ष से समस्त परपदार्थों से उदासीनता करने से ही होता है। किसी भी परलक्ष से रुकना, सो शास्त्र का प्रयोजन नहीं है क्योंकि पर के लक्ष से राग होता है। निमित्त भी पर द्रव्य ही है, इसलिये निमित्त की अपेक्षा छोड़कर अर्थात् उसकी उपेक्षा करके अपने स्वभाव की अपेक्षा करना ही प्रयोजन हैं। 'निमित्त की उपेक्षा करने योग्य नहीं है अर्थात् निमित्त का लक्ष छोड़ने योग्य नहीं है'—ऐसा अभिप्राय मिथ्यात्व है; और उस मिथ्या अभिप्राय को छोड़ने के बाद भी अस्थिरता के कारण जो निमित्त पर लक्ष जाता है, सो राग का कारण है। इसलिये अपने स्वभाव के आश्रय से निमित्त इत्यादि परद्रव्यों की उपेक्षा करना, सो यथार्थ है।

५२- मुमुक्षु जीवों को यह बात समझनी चाहिये

उपादान-निमित्त सम्बन्धी यह बात विशेष प्रयोजनभूत है। इसे समझे बिना कदापि जीव की दो द्रव्यों में एकता की बुद्धि दूर नहीं हो सकती और स्वभाव की श्रद्धा नहीं हो सकती। स्वभाव की श्रद्धा हुए बिना स्वभाव में अभेदता नहीं होता, अर्थात् जीव का कल्याण नहीं होता। ऐसा ही वस्तु स्वभाव केवलज्ञानियों ने देखा है और संत मुनियों ने कहा है। यदि जीव को कल्याण करना हो तो उसे समझना होगा।

५३- समर्थ कारण की व्याख्या

प्रश्न—समर्थ कारण किसे कहते हैं ?

उत्तर—जब उपादान में कार्य होता है, तब उपादान और निमित्त दोनों एक साथ होते हैं, इसलिये उन दोनों को एक साथ समर्थ कारण कहा जाता है, और वहाँ प्रतिपक्षी कारणों का अभाव अवश्य होता है। इससे यह नहीं समझना चाहिये कि—उपादान के कार्य में निमित्त कुछ करता है। जब उपादान की योग्यता होती है, तब निमित्त अवश्य होता है।

प्रश्न—समर्थ कारण द्रव्य है, गुण है, या पर्याय ?

उत्तर—वर्तमान पर्याय ही समर्थ कारण है। पूर्व पर्याय को वर्तमान पर्याय का उपादान कारण कहना, सो व्यवहार है। निश्चय से तो वर्तमान पर्याय स्वयं ही कारण-कार्य है और इससे भी आगे बढ़कर कहें तो एक पदार्थ में कारण और कार्य-ऐसे दो भेद करना भी व्यवहार है। वास्तव में तो प्रत्येक समय की पर्याय अहेतुक है।

५४- उपादानकारण की परिभाषा

प्रश्न—मिट्टी को घड़े का उपादानकारण कहा जाता है, सो क्या ठीक है ?

उत्तर—वास्तव में घड़े का उपादानकारण मिट्टी नहीं है, किन्तु जिस समय घड़ा बनता है, उस समय की अवस्था ही स्वयं उपादानकारण है। ऐसा होने पर भी, मिट्टी को घड़ा का उपादान कारण कहने का हेतु यह बताना है कि घड़ा बनने के लिये मिट्टी में जैसी सामान्य योग्यता है, वैसी योग्यता अन्य पदार्थों में नहीं है। मिट्टी में घड़ा बनने की विशेष योग्यता तो जिस समय घड़ा बनता है उसी समय है, उससे पूर्व उसमें घड़ा बनने की विशेष योग्यता नहीं है; इसलिये विशेष योग्यता ही सच्चा उपादानकारण है। इस विषय को अधिक स्पष्ट करने के लिये उसे जीव में लागू करते हैं:—

सम्यक्दर्शन प्रगट होने की सामान्य योग्यता तो प्रत्येक जीव में है, जीव के अतिरिक्त अन्य किसी जीव में वैसी सामान्य योग्यता नहीं है। सम्यक्दर्शन की सामान्य योग्यता (शक्ति) समस्त जीवों में है किन्तु विशेष योग्यता भव्य जीवों में ही होती है। अभव्य जीव के तथा भव्य जीव जब तक मिथ्यादृष्टि रहता है, तब तक उसके भी सम्यक्दर्शन की विशेष योग्यता नहीं होती। विशेष योग्यता तो उसी समय होती है, जिस समय जीव पुरुषार्थ से सम्यक्दर्शन प्रगट करता है। सामान्य योग्यता द्रव्यरूप है और विशेष योग्यता प्रगटरूप है; सामान्य योग्यता कार्य के प्रगट होने का उपादानकारण नहीं किन्तु विशेष योग्यता ही उपादानकारण है।

५५- चारित्रदशा और वस्त्र सम्बन्धी स्पष्टीकरण

प्रश्न—'चारित्रदशा प्रगट होती है, इसलिये वस्त्र नहीं छूट जाते किन्तु वस्त्र के परमाणुओं की योग्यता से ही वे छूटते हैं' ऐसा कहा है; किन्तु किसी जीव के चारित्रदशा प्रगट हो और वस्त्र में छूटने की योग्यता न हो तो सवस्त्र मुक्ति हो जायेगी?

उत्तर—वहाँ सवस्त्रमुक्ति होने की बात नहीं है। चारित्रदशा का स्वरूप ही ऐसा है कि वहाँ वस्त्र के साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होता ही नहीं। इसलिये चारित्रदशा में सहज ही वस्त्र त्याग होता है। वस्त्र का त्याग उस परमाणु की अवस्था की योग्यता है, उसका कर्ता आत्मा नहीं है।

प्रश्न—यदि किसी मुनिराज के शरीर पर कोई जीव वस्त्र डाल जाये तो उस समय उनके चारित्र का क्या होगा?

उत्तर—किसी दूसरे जीव के द्वारा वस्त्र डाल देने से मुनि के चारित्र में कोई बाधा नहीं आती, क्योंकि उस वस्त्र के साथ उनके चारित्र का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध नहीं है; किन्तु वहाँ तो वस्त्र ज्ञान का ज्ञेय अर्थात् ज्ञेय-ज्ञायकपन का निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

५६- सम्यक् नियतिवाद क्या है?

वस्तु की पर्याय क्रमबद्ध जिस समय जो होनी हो, सो वही होती है-ऐसा सम्यक्

नियतिवाद जैनदर्शन का वास्तविक स्वभाव है-यही वस्तु स्वभाव है। 'नियत' शब्द शास्त्रों में अनेक जगह आता है, किन्तु इस समय तो शास्त्रों को पढ़े हुऐ लोग भी सम्यक् नियतिवाद की बात सुनकर डुबकियां खाने लगते हैं; इसका निर्णय करना कठिन है, इसलिये कोई 'एकान्तवाद' कहकर उड़ाता है। नियत का अर्थ है निश्चित—नियमबद्ध; वह एकान्तवाद नहीं किन्तु वस्तु का यथार्थ स्वभाव है-यही अनेकान्तवाद है। सम्यक् नियतवाद का निर्णय करते समय बाह्य में राजपाट का संयोग हो तो वह छूट ही जाना चाहिये-ऐसा नियम नहीं है, किन्तु उसके प्रति यथार्थ उदासभाव अवश्य हो जाता है। बाह्य संयोग में अंतर पड़े या न पड़े, किन्तु अन्तर के निर्णय में फर्क हो जाता है। अज्ञानी जीव नियतिवाद की बातें करता है किन्तु ज्ञान और पुरुषार्थ को स्वभावोन्मुख करके निर्णय नहीं करता। नियतिवाद का निर्णय करने में जो ज्ञान और पुरुषार्थ आता है, उसे यदि जीव पहिचाने तो स्वभावाश्रित वीतरागभाव प्रगट हो और पर से उदास हो जाये; क्योंकि सम्यक् नियतिवाद का निर्णय किया कि स्वयं सब का मात्र ज्ञानभाव से ज्ञाता-दृष्टा रह गया, और पर का या राग का कर्ता नहीं हुआ।

स्वचतुष्टय में परचतुष्टय की नास्ति ही है तो फिर उसमें पर क्या करे ? उपादान-निमित्त का यथार्थ निर्णय आ जाता है, तब कर्तृत्व भाव उड़ जाता है, और वीतरागदृष्टि पूर्वक वीतरागी स्थिरता का प्रारम्भ हो जाता है। अज्ञानी जन इस नियतिवाद को एकान्तवाद और गृहीत मिथ्यात्व कहते हैं, किन्तु ज्ञानीजन कहते हैं कि यह सम्यक् नियतिवाद ही अनेकांतवाद है और उसके निर्णय में जैनदर्शन का सार आ जाता है, और वह केवलज्ञान का कारण है।

५७- कुछ अकस्मात् है ही नहीं

प्रश्न—सम्यक्दृष्टि के अकस्मात भय नहीं होता, इसका क्या कारण है ?

उत्तर—सम्यक्दृष्टि को यथार्थ नियतिवाद का निर्णय है कि जगत के समस्त पदार्थों की अवस्था उसकी योग्यतानुसार ही होती है। जो न होना हो, ऐसा कुछ नवीन होता ही नहीं, इसलिये कोई अकस्मात है ही नहीं। ऐसी नि:शंक श्रद्धा के कारण सम्यक्दृष्टि को अकस्मात् भय नहीं होता। वस्तु की पर्यायें क्रमश: ही होती हैं, अज्ञानी को इसकी प्रतीति नहीं है, इसलिये उसे अकस्मात् मालूम होता है।

५८- निमित्त किसका ? और कब ?

यदि निमित्त के यथार्थ स्वरूप को समझे तो यह मान्यता दूर हो जाये कि निमित्त, उपादान में

कुछ करता है। क्योंकि जब कार्य हुआ, तब तो पर को उसका निमित्त कहा गया है, कार्य होने से पूर्व किसी को उसका निमित्त नहीं कहा जाता। जो कार्य हो चुका है, उसमें निमित्त क्या करेगा? और कार्य होने से पूर्व निमित्त किसका? कुम्हार किसका निमित्त है? यदि घड़ारूपी कार्य हो तो कुम्हार उसका निमित्त हो, और यदि घड़ारूपी कार्य ही न हो तो कुम्हार उसका निमित्त नहीं है। घड़ा बनने से पूर्व किसी को 'घड़े का निमित्त' कहा ही नहीं जा सकता। और यदि जब घड़ा बनता है, तभी कुम्हार को निमित्त कहा जाता है, तो फिर कुम्हार ने घड़े में कुछ भी किया है, यह बात स्वयमेव असत्य सिद्ध हो जाती है।

प्रश्न—उपादान में कार्य न हो तो परद्रव्य को निमित्त नहीं कहा जाता, यह बात ऊपर कही गई है; परन्तु 'इस जीव को अनन्त बार धर्म का निमित्त मिला, तथापि जीव स्वयं धर्म को नहीं समझ पाया' ऐसा कहा जाता है, और उसमें जीव के धर्मरूपी कार्य नहीं हुआ, तथापि परद्रव्यों को धर्म में निमित्त तो कहा है?

उत्तर—'इस जीव को अनन्त बार धर्म का निमित्त मिला किन्तु यह स्वयं धर्म को नहीं समझा' ऐसा कहा जाता है। यहाँ यद्यपि उपादान में (जीव में) धर्मरूपी कार्य नहीं हुआ, इसलिये वास्तव में उसके लिये वे पदार्थ धर्म के निमित्त नहीं है। परन्तु जो जीव धर्म प्रगट करते हैं, उन जीवों को इस प्रकार के निमित्त ही होते हैं, ऐसा ज्ञान कराने के लिये, कार्य के न होने पर भी स्थूल दृष्टि से उसे निमित्त कहा जाता है।

५९- अनुकूल निमित्त

खौलते हुए तेल में हाथ जल गया, वहाँ हाथ के जलने में खौलता हुआ तेल अनुकूल निमित्त है। घड़े के फूटने में ठोकर लग जाना अनुकूल निमित्त है। अमुक पदार्थ को अनुकूल निमित्त कहा है, इसलिये यह नहीं समझना चाहिये कि उसके अतिरिक्त अन्य पदार्थ प्रतिकूल हैं। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के लिये अनुकूल या प्रतिकूल है ही नहीं। निमित्त को अनुकूल कहने का अर्थ इतना ही है कि वह पदार्थ कार्य के होते समय सद्भावरूप होता है और व्यवहार दृष्टि से उस पर अनुकूलता का आरोप आ सकता है।

६०- दो पर्यायों की योग्यता एक साथ नहीं होती

एक समय में दो योग्यताऐं कदापि नहीं होती। क्योंकि जिस समय जैसी योग्यता है, वैसी पर्याय प्रगट होती है, और उसी समय यदि दूसरी योग्यता भी हो तो एक ही साथ दो पर्यायें हो जायें, परन्तु ऐसा कभी नहीं हो सकता। जिस समय जो पर्याय प्रगट होती है, उस समय दूसरी पर्याय की

योग्यता नहीं होती। आटारूप पर्याय की योग्यता के समय रोटीरूप पर्याय की योग्यता नहीं होती। तब फिर इस बात को अवकाश ही कहाँ है कि निमित्त नहीं मिला इसलिये रोटी नहीं बनी? और जब रोटी बनती है, तब उससे पूर्व की आटारूप पर्याय का अभाव करके ही बनती है, तब फिर दूसरे को उसका कारण कैसे कहा जा सकता है? हाँ, जो आटारूप पर्याय का व्यय हुआ, सो उसे रोटीरूप पर्याय का कारण कहा जा सकता है?

६१- 'जीव पराधीन है' इसका क्या अर्थ है?

प्रश्न—समयसार नाटक में स्याद्वाद अधिकार के ९वें श्लोक में जीव को पराधीन कहा है। शिष्य पूछता है कि हे भगवन्! जीव पराधीन है कि स्वाधीन? तब श्री गुरु उत्तर देते हैं कि—द्रव्यदृष्टि से जीव स्वाधीन है और पर्यायदृष्टि से पराधीन है—तब फिर वहाँ जीव को पराधीन क्यों कहा है?

उत्तर—पर्यायदृष्टि से जीव पराधीन है अर्थात् जीव स्वयं अपने स्वभाव का आश्रय छोड़कर परलक्ष से स्वयं स्वतंत्र रूपसे पराधीन होता है, परन्तु परद्रव्य कहीं जीव पर बरजोरी करके उसे पराधीन नहीं करते। पराधीन अर्थात् स्वयं स्वतंत्ररूप से पर के आधीन होता है-पराधीनता मानता है, न कि परपदार्थ उसको आधीन करते हैं।

६२- द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग का क्रम

प्रश्न—यह उपादान-निमित्त की बात तो द्रव्यानुयोग की है। परन्तु पहले तो जीव चरणानुयोग के अनुसार श्रद्धानी हो और उस चरणानुयोग के अनुसार व्रत-प्रतिमा इत्यादि को अंगीकार करे, और फिर उस द्रव्यानुयोग के अनुसार श्रद्धानी होकर सम्यक्दर्शन प्रगट करे-ऐसी जैनधर्म की परिपाटी होने के संबन्ध में कितने ही जीव मानते हैं; क्या यह ठीक है?

उत्तर—नहीं, जैनमत की ऐसी परिपाटी नहीं है। परन्तु जैनमत में ऐसी परिपाटी है कि पहले सम्यक्त्व हो और फिर व्रत हो। सम्यक्त्व, स्व-पर का श्रद्धान होने पर होता है तथा वह श्रद्धान द्रव्यानुयोग का अभ्यास करने पर होता है। इसलिये पहले द्रव्यानुयोग के अनुसार श्रद्धान करके सम्यक्दृष्टि हो और फिर चरणानुयोग के अनुसार व्रतादिक करके व्रती होता है। इस प्रकार मुख्यतया तो निम्न दशा में ही द्रव्यानुयोग कार्यकारी हैं तथा गौणरूप से जिसे मोक्षमार्ग की प्राप्ति होती न मालूम हो, उसे पहले किसी व्रतादि का उपदेश दिया जाता है; इसलिये समस्त जीवों को मुख्यतया द्रव्यानुयोग के अनुसार आध्यात्मिक उपदेश का अभ्यास करना चाहिये। यह जानकर निम्न दशावालों को भी द्रव्यानुयोग के अभ्यास से पराङ्मुख होना योग्य नहीं है। ♦

[मोक्षमार्ग प्रकाशक (गुजराती), पृष्ठ २९५]

अज्ञानी और ज्ञानी की भावना में

महान अन्तर

[समयसार, मोक्ष अधिकार गाथा २९६ के प्रवचन से]

यदि कोई यह विचार करे कि यदि मेरे द्वारा जगत् के बहुत से जीवों को लाभ होता हो तो मेरे कुछ भव भले ही बढ़ जाय और मेरा चाहे जो हो जाय! यहाँ यह विचार करना है कि यह भावना किसकी है? पक्के मिथ्यादृष्टि की ही यह भावना है। भव का कारण तो विकार है, जिसके विकार को लंबायमान करने की भावना है, वही जीव मिथ्यादृष्टि है। जिसने भव की भावना की, उसने भव का कारण जो विकार है, उसकी भावना की और विकार रहित स्वभाव की भावना नहीं की।

ज्ञानी धर्मात्मा के भी शुभविकल्प आता है कि 'जगत् के जीव धर्म प्राप्त करें' परंतु धर्मात्मा जीव उस विकार को लंबाना नहीं चाहता। ज्ञानी को यह प्रतीति है कि मेरे विकल्प के द्वारा किसी को (मुझे या दूसरे को) लाभ होता ही नहीं और किसी के कारण से भव हो ही नहीं सकते। जगत् को समझाने के लिये मेरा एक भी क्षण भव में रुकने के लिये होता ही नहीं है, मैं अपने राग के कारण से रुका हुआ हूँ। दूसरे जिन जीवों को सम्यग्ज्ञान का लाभ होता है, वह तो उनकी अपनी पात्रता से होता है; मैं तो निमित्तमात्र हूँ। ज्ञानी के ऐसा अभिप्राय (विचार) तो होता ही नहीं है कि मैं पर को समझा सकता हूँ परन्तु 'पर को समझाने में मैं निमित्त हूँ' ऐसी परलक्षी भावना भी ज्ञानी के नहीं होती। प्रस्तुत जीवों की तैयारी हो, इसलिये निमित्त को रुक जाना पड़ता है—ऐसी पराधीनता नहीं है।

शुद्ध ज्ञाता-दृष्टा भाव के अतिरिक्त बीच में कोई भी विकल्प आवे तो वह लाभ का कारण नहीं है। किन्तु भव के भावों को छेदकर भवरहित चैतन्यस्वभाव की भावना ही मोक्ष का कारण है। ज्ञानी, भव की भावना भाये या स्वभाव की? पर के कारण से या विकल्प के कारण से ज्ञानी पुरुष एक क्षण भी रुकना नहीं चाहते; पुरुषार्थ की मंदता के कारण से रुके हुये हैं और उग्र पुरुषार्थ की भावना के बल से उसे नष्ट कर देना चाहते हैं।

किसी पर अधिक प्रेम हो और उससे कहे कि आने वाले भव में तुम्हारे घर जन्म लेकर तुम्हारे समस्त दुःख दूर कर दूँगा—ऐसी भावना करनेवाले को मूर्ख लोग तो 'परमार्थी' कहते हैं, परन्तु ज्ञानी कहते हैं कि वह परमार्थी नहीं है, वह जीव महा पापी-मिथ्यादृष्टि है, क्योंकि भव रहित

अपने स्वभाव का अनादर करके उसने विकार की भावना भायी है।

समयसार में पहले २०५ वीं गाथा में कहा था कि—

णाणगुणेण विहीणा एयं तु पयं बहू वि ण लहंते।
तं गिण्हं णियदमेदं जदि इच्छसि कम्मपरिमोक्खं॥

अर्थ—ज्ञान गुण से रहित बहुत से लोग (अनेक प्रकार के कर्म करने पर भी) इस ज्ञानस्वरूप पद को प्राप्त नहीं होते; इसलिये हे भव्य जीव! यदि तू कर्म से सर्वथा मुक्त होना चाहता है तो ऐसे नियत ऐसा इस ज्ञान को ग्रहण कर।

जैसे समवसरण में साक्षात् तीर्थंकर भगवान के सन्मुख उसी भव से मोक्ष जानेवाले तथा एकावतारी सन्त-मुनियों के समूह के बीच में मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी बैठा हो और वह अनंत संसारी हो; किन्तु वहाँ भगवान की और संत मुनियों की उपस्थिति होते हुये भी, वहाँ उस जीव को अपने ही ज्ञान के द्वारा स्वभाव को जानना नहीं आता, उसमें दूसरा कोई क्या कर सकता है? उसी प्रकार हे भाई! तू अपने भाव में दूसरे जीवों को समझाने के लिये चाहे जितने विकल्प कर परन्तु जब पर जीव ही अपने ज्ञान के द्वारा न समझें तो तब तू वहाँ क्या करेगा? इसलिये पर जीवों के लिये अपने भव की भावना करना, सो महा मिथ्यात्वदशा और संसार की तीव्र रुचि है, उसमें परोपकार किंचित् मात्र भी नहीं है। अभी जो स्वयं ही सत्य को नहीं समझा, वह दूसरे को सत् के समझाने में निमित्त कैसे हो सकेगा?

परजीव अनंत हैं, उनका चाहे जो हो, वे समझें या न समझें किन्तु मैं अपने भाव में समझ कर और परजीवों के प्रति के विकल्पों को दूर करके अल्प काल में मुक्ति प्राप्त करूँगा, पर के कारण मेरे भव हो ही नहीं सकता, इस प्रकार ज्ञानी तो अपने भव रहित की ही निःशंक भावना करते हैं।

जो यों मानता है कि हमें तो सम्यग्दर्शन प्राप्त हो चुका है और भगवान ने यों कहा है कि सम्यग्दृष्टि मोक्ष प्राप्त करते ही हैं, इसलिये हमारी मुक्ति तो होनेवाली ही है, किन्तु किसी जीव के कारण से यदि कुछ समय राग करना पड़े या भव करना पड़े तो भले हो-ऐसा रहें, वह मिथ्यादृष्टि अनंत संसारी है। जिसके सम्यग्दर्शन होता है, उसके भव की इच्छा या राग की भावना हो ही नहीं सकती।

इसी प्रकार यदि कोई यों भावना करे कि अमुक जीव मेरा मित्र है और मुझे उस पर बहुत

प्रेम है, इसलिये उसे समझाने के लिये हमें अभी विकल्प दूर नहीं करना है किन्तु अभी तो विकल्प रखना है, चाहे एकाध भव भले हो, किन्तु उसके समझाने के बाद फिर विकल्प नष्ट करके केवलज्ञान प्राप्त करूंगा। यदि वर्तमान में मैं विकल्प को दूर करके केवलज्ञान प्राप्त कर लूंगा, तो फिर मेरे विकल्प के बिना उसे कौन समझायेगा? ऐसी भावना करनेवाला एकदम पराधीन दृष्टिवाला, और स्वभाव के पुरुषार्थ का निषेध करनेवाला है। अरे भाई! जिसने एक भी परजीव के लिये राग करके एक भव में रुकना माना, उसके अभिप्राय में अनंत जीवों के लिये अनंत भव करने का भाव विद्यमान ही है। ज्ञानी के शुभराग तो होता है परंतु उस राग को वे परजीव के लिये रखना नहीं चाहते, तथा उसके एक क्षण भी रखने का अभिप्राय नहीं है। यदि इसी क्षण संपूर्ण राग दूर होकर केवलज्ञान हो तो मुझ कोई राग नहीं रखना है।

फिर हे भाई! 'पर को समझाने के लिये अभी हमें विकल्प दूर नहीं करना है किन्तु रख छोड़ना है' इसमें तूने क्या कहा? अरे! तूने अपनी परम शुद्ध केवलज्ञान दशा का ही निषेध किया है। जिसने केवलज्ञान का एक समय के लिये भी नकार किया, उसने त्रिकाल शुद्धस्वभाव का ही अनादर किया और राग का ही आदर किया है, वह अनंत संसारी है। अरे भाई! यदि तुझे आत्म-प्रतीति हो और यदि इसी क्षण केवलज्ञान प्रगट हो सकता हो तो प्रगट कर। यदि प्रस्तुत जीव की पात्रता होगी तो मेरे विकल्प के बिना भी दिव्यध्वनि खिरने लगेगी और समवशरण की रचना हो जायगी। इसलिये पर के कारण विकार करने को यह अथवा कोई भी विकल्प रख छोड़ने योग्य है—ऐसा अभिप्राय छोड़ देना चाहिये और भेदविज्ञान की ही अविच्छिन्न धारा से भावना करनी चाहिये, यही मोक्ष का कारण है। ●

भगवान की यथार्थ स्तुति का स्वरूप

(समयसार प्रवचन भाग २ से)

१— द्रव्यदृष्टि के द्वारा ज्ञानस्वभाव का अनुभव होने पर, विकार से किंचित्मात्र (दृष्टि की अपेक्षा से) भिन्न होना ही वीतराग की स्तुति है। वीतराग केवलज्ञानी विकार रहित हैं और उनकी निश्चय स्तुति भी विकार से राहित्य का ही अंश है।

प्रश्न—यदि कोई जीव ज्ञानस्वभाव से आत्मा को न पहिचाने और शुभभाव से भगवान की स्तुति का उच्चारण करे तो उसे व्यवहार स्तुति कहेंगे न?

उत्तर—यह पहचाने बिना कि भगवान कौन और हम कौन हैं?—निश्चय स्तुति या व्यवहार स्तुति कोई भी नहीं होती। शुभभाव करके यदि कषाय मंद करे तो पुण्य बंध होता है परंतु आत्मा की पहिचान के बिना मात्र शुभराग को व्यवहार स्तुति नहीं कह सकते। जगत् के पाप भाव छोड़कर भगवान का स्तवन, वंदन, पूजन इत्यादि शुभभाव करने का निषेध नहीं है, परंतु मात्र शुभ में धर्म मानकर उसी में संतोषित न होकर आत्मा की पहिचान करने को कहा है, क्योंकि आत्मा की पहिचान के बिना शुभभाव अनंत बार किया किन्तु भव का अंत नहीं हुआ; जो पहले अनंत बार किया जा चुका, उस शुभ की धर्म में मुख्यता नहीं है, किन्तु अनंत काल में जो कभी नहीं की गई, ऐसी अपूर्व आत्मप्रतीति करके भव का अंत करने की मुख्यता है।

२— यहाँ निश्चय स्तुति और व्यवहार स्तुति की व्याख्या की जा रही है। राग से पृथक् होकर अपने ज्ञानस्वभाव के लक्ष्य में स्थिर होना, सो निश्चय स्तुति है। ज्ञानस्वभाव की प्रतीति होने पर भी, अस्थिरता के कारण स्तुति के राग की वृत्ति उठती है किन्तु उस वृत्ति का ज्ञानी के निषेध रहता है; इसलिये वह व्यवहार स्तुति कही जाती है, परंतु अज्ञानी तो उस वृत्ति को ही अपना स्वरूप मान बैठा है और वृत्ति से भिन्न स्वरूप मानता ही नहीं; इसलिये उसकी शुभ वृत्ति को व्यवहार स्तुति भी नहीं कह सकते। विकल्प को तोड़कर जो ज्ञानस्वभाव को राग से भिन्न अनुभव करता है, सो निश्चय स्तुति है क्योंकि उसमें राग नहीं है। और जिस जीव के आत्मा के ज्ञानस्वभाव की पहचान होने के बाद राग की शुभ वृत्ति हुई, उसे ज्ञानस्वभाव में स्वीकार नहीं करता परंतु वहाँ 'राग का निषेध' करता है, इसलिये उसे व्यवहार स्तुति कहते हैं। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिये कि मात्र राग को व्यवहार नहीं कहा परंतु रागरहित स्वभाव की श्रद्धा के बल से जब राग का निषेध होता है, तब राग को 'व्यवहार' कहा जाता है। अज्ञानी को रागरहित स्वरूप की खबर नहीं है, इसलिये वास्तव

में तो उसके व्यवहार भी नहीं होता। निश्चय की प्रतीति के बिना जो पर की भक्ति है, सो तो राग की और मिथ्यात्वरूप अज्ञान की ही भक्ति है अर्थात् संसार की ही भक्ति है; उसमें भगवान की भक्ति नहीं।

३— स्तुति कौन करता है? स्तुति पुण्य-पाप की भावना से रहित शुद्धभाव है। आत्म -प्रतीतिसहित और रागरहित स्वरूप में जितनी एकाग्रता की जाती है, उतनी ही यथार्थ स्तुति है, जो राग का भाव है, सो स्तुति नहीं है। यथार्थ स्तुति साधक धर्मात्मा के ही होती है। जिसे आत्मा की प्रतीति नहीं है, उसके सच्ची स्तुति नहीं होती... जिसने पूर्ण स्वरूप की प्रतीति तो की है किन्तु जिसके अभी पूर्णदशा प्रगट नहीं हुई, ऐसे साधक जीव स्तुति करते हैं। इस प्रकार चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सम्यग्दृष्टि से लेकर बारहवें गुणस्थान पर्यन्त स्तुति होती है, बारहवें गुणस्थान के बाद स्तुति नहीं होती।

४—जो ज्ञानस्वभाव है, सो भगवान ही है, क्योंकि मात्र ज्ञान में न तो विकार रहता है, न अपूर्णता रहती है और न परवस्तु का संयोग होता है। सबका ज्ञातृत्व और अपने से परिपूर्णता की प्राप्तिरूप ज्ञान भगवान ही है। जैसे भगवान के भव नहीं होते, वैसे ही ज्ञानस्वभाव में भव नहीं हैं। जिसने ज्ञानस्वभाव की प्रतीति की, उसे भव की शंका नहीं रहती। ज्ञानस्वभाव विकार से अधिक है, विश्व पर तैरता है; समस्त पदार्थों को जानता है किन्तु कहीं भी अपना स्वरूप मानकर अटक नहीं जाता, अलग ही अलग रहता है।

५—आचार्यदेव कहते हैं कि जैसा इस समयसार में कहा है, उसी तरह जो जीव गुरुगम से यथार्थ समझता है, वह इस काल में भी साक्षात् स्वानुभव के द्वारा भव रहित की श्रद्धा में मोक्ष देखता है। उसे साक्षात् निर्णय हो जाता है कि सर्वज्ञ वीतराग भगवान ने भी इसी प्रकार स्वाधीन मार्ग का स्वरूप कहा है। जितने ज्ञानी हो चुके, उन्होंने स्वरूप इसी तरह जाना और कहा था और जो वर्तमान में हैं, वे भी इसी प्रकार जानते हैं और ऐसा ही कहते हैं और भविष्य में भी ऐसा ही होगा। पहले ऐसा दृढ़ निश्चय होने के बाद पुण्य-पाप के विकल्प से रहित, पराश्रय रहित स्वभाव में एकाग्र होने का पुरुषार्थ प्रगट होता है, और पूर्ण स्थिरता होने पर पूर्ण वीतरागता प्रगट होती है।

६—इस पुस्तक के अंतिम मंगल रूप वचन इस प्रकार हैं 'ऐसी यथार्थ प्रतीति करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीव जिनेन्द्रदेव के लघुनंदन हैं'।

मुद्रक : चुनीलाल माणेकचंद रवाणी, शिष्ट साहित्य मुद्रणालय, दास कुंज, मोटा आंकडिया ता.१५-११-४७
प्रकाशक : जमनादास माणेकचंद रवाणी, आत्मधर्म कार्यालय, मोटा आंकडिया, काठियावाड